मार्च 2012

प्रसार दूत

वर्ष 16 2012 अंक-1

संरक्षक
डॉ. हरि शंकर गुप्त
निदेशक

प्रधान सम्पादक
डॉ. के. विजयराघवन
संयुक्त निदेशक (प्रसार)

सम्पादक
डॉ. मोनिका वासन
डॉ. अम्बरीष कुमार शर्मा

उप सम्पादक
डॉ. सी.बी. सिंह

संपादक मंडल
डॉ. हरीश कुमार
डॉ. दिनेश कुमार
डॉ. ए.डी. मुंशी
डॉ. प्रतिभा शर्मा
डॉ. अनुपमा

तकनीकी सलाहकार समिति
डॉ. सुभाष चन्द्र
डॉ. मनोज खन्ना
डॉ. के.वी. प्रसाद
डॉ. श्रुति सेठी
डॉ. आई.एम. मिश्रा
श्री विजयभान सिंह

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

प्रभारी अधिकारी
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली - 110012
फोन: 011-25841670

विषय सूची **पृष्ठ संख्या**

सम्पादकीय

खेत-खलिहान

- धान की उन्नत उत्पादन तकनीकी 1
- अरहर का बीजोत्पादन 8
- उत्तम बीज उत्पादन में मूलभूत तकनीक 11
- बीज उत्पादन इकाई - उन्नत बीजों का स्रोत 13
- अरहर की खेती में वास्तविक और संभावित उपज में अन्तर - कारण तथा उपाय 19
- समृद्ध भारत के लिए कृषि व्यापार - वैश्विक चुनौतियाँ एवं उपाय 23

बागवानी

- अमरूद की उन्नतशील बागवानी 27
- उत्तर भारत में अंगूर की उन्नत उत्पादन तकनीक 30
- दिल्ली के किसानों की सब्जियों द्वारा शुद्ध आय एवं लागत-लाभ विश्लेषण - एक आर्थिक अध्ययन 37
- रजनीगंधा: सौंदर्य एवं सुगंध से संपन्न पुष्पीय फसल की वैज्ञानिक खेती 44
- एमेरिलिस की वैज्ञानिक खेती 47

फसल-सुरक्षा

- धान की खेती में जैव नियंत्रण-एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन 50
- बासमती धान में बकाने रोग 55
- धान की फसल में जड़-गांठ सूत्रकृमि रोग नियंत्रण 56

घर-आंगन

- मोटे अनाजों के प्रसंस्करण से विकसित मूल्यवर्धक खाद्य पदार्थ 58

मेरे देश का किसान 60

वार्षिक शुल्क रु. 60/- मनीआर्डर द्वारा **एक प्रति मूल्य रु 15/-**

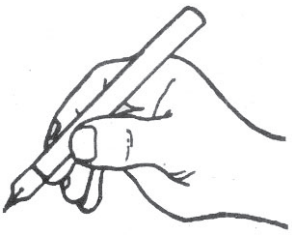

सम्पादकीय

आजादी के बाद से भारतीय कृषि ने बहुत ऊंचे आयाम छुये हैं। हरित क्रान्ति ने नि:सन्देह देश को खाद्यान्न उत्पादन में आत्म निर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, और मुख्य खाद्य पदार्थों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता जनसंख्या बढ़ते रहने के बाद भी बढ़ी है। लेकिन प्रति व्यक्ति कृषि जोत सिकुड़ कर 0.3 हेक्टेयर ही रह गई है, जो विकसित देशों की उपलब्धता 11 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति से बहुत ही कम है। अत: हमें छोटे किसानों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने की आवश्यकता है। हमें खेती के ऐसे तरीके अपनाने हैं, जो किसानों की छोटी-छोटी जोतों की टिकाऊ उत्पादकता, अधिक आय तथा उन्नत कृषि क्रियाओं का समायोजन करने वाले हों। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने हमेशा उन्नत प्रौद्योगिकियों द्वारा किसानों को उच्च पैदावार और आमदनी सुनिश्चित करने का मार्ग दिखाया है। किसान समृद्धि हेतु नवोन्मेषी तकनीकों, उन्नत किस्मों के गुणवत्ता वाले बीज, कम्पोस्ट व वर्मी कम्पोस्ट खादें, उर्वरक, समेकित कीट व रोग प्रबन्धन, फसल विशेष सम्बन्धित नवीनतम सस्य क्रियायें, उन्नत यन्त्र, बाजारोन्मुखी खाद्य उत्पादों की जानकारी, आदि की उपलब्धता बहुत ही आवश्यक है। अपने उत्पादों की अवश्यम्भावी आमदनी हेतु कटाई उपरान्त प्रौद्योगिकियाँ एवं फल व सब्जी प्रसंस्करण विधियाँ अपनाने की भी किसानों को नितान्त आवश्यकता है।

उपर्युक्त दर्शायी गयी प्रौद्योगिकियों को किसानों तक पहुँचाने हेतु पूसा संस्थान प्रति वर्ष मेले का आयोजन तथा त्रैमासिक पत्रिका **'प्रसार दूत'** प्रकाशित करता है। इसी कड़ी में **प्रसार दूत** के प्रस्तुत अंक के **खेत-खलिहान** शीर्षक में धान की फसल की उत्पादन तकनीकी, अरहर का बीज उत्पादन, उन्नत बीज तैयार करने के लिये मूलभूत तकनीकी, बीज उत्पादन इकाई द्वारा उन्नत बीजों की उपलब्धता, कृषि व्यापार की वैश्विक चुनौतियाँ एवं उपाय आदि विषयों को सम्मिलित किया गया है। **बागवानी** शीर्षक के अंतर्गत अमरूद व अंगूर की उत्पादन तकनीकियों के अलावा पुष्पीय फसलों जैसे रजनीगंधा व एमेरिलिस की वैज्ञानिक खेती पर प्रकाश डाला गया है। **फसल-सुरक्षा** नामक शीर्षक में बासमती धान में बकाने रोग नियंत्रण, धान में एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन एवं धान की फसल में जड़गाँठ रोग प्रबंधन जैसी महत्वपूर्ण जानकारियाँ समाहित की गयी हैं। **घर-आंगन** शीर्षक में मोटे अनाजों का मूल्य वर्धन हेतु नये उत्पाद बनाने की तकनीकी प्रदर्शित की गयी है।

आशा है कि प्रस्तुत अंक में निहित जानकारियां कृषक बन्धुओं को लाभ प्रद सिद्ध होंगी।

सम्पादक

धान की उन्नत उत्पादन तकनीकी

दिनेश कुमार, ए.के. सिंह, सुभाष चन्द्र, यू.डी. सिंह
सस्य विज्ञान संभाग, आनुवंशिकी संभाग, कीट विज्ञान संभाग, पादप रोग संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

जलवायु

धान मुख्यत: उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु की फसल है। धान को उन सभी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है जहां 4-6 महीनों तक वायु का औसत तापमान 21^0 से. अथवा इससे अधिक रहता है। फसल की अच्छी बढ़वार के लिए $25-30^0$ से. और पकने के लिए $20-25^0$ से. तापमान उपयुक्त होता है। रात्रि का तापमान जितना कम रहे, फसल की पैदावार के लिए उतना ही अच्छा है लेकिन 15^0 से. से नीचे नहीं गिरना चाहिए।

मृदा

धान की खेती के लिए अधिक जलधारण क्षमता वाली मृदाएं जैसे - चिकनी, मटियार या मटियार-दोमट मृदा प्राय: उपयुक्त होती हैं। मृदा का पी.एच. मान प्राय: 5.5-6.5 उपयुक्त होता है। यद्यपि धान की खेती 4 से 8 अथवा इससे भी अधिक पी.एच. मान वाली मृदाओं में की जा सकती है।

उन्नत किस्में

धान की खेती के लिए अपने क्षेत्र विशेष के लिए उन्नत किस्मों का ही प्रयोग करना चाहिए जिससे कि अधिक से अधिक पैदावार ली जा सके। इसके लिए कुछ प्रमुख किस्में निम्न हैं -

अगेती किस्में (110-115): इनमें मुख्य रूप से पी एन आर-381, पी एन आर-162, नरेन्द्र धान-86, गोविन्द, साकेत-4 एवं नरेन्द्र धान-97 आदि किस्में प्रमुख हैं। इनकी नर्सरी का समय 15 मई से 15 जून तक है तथा इनकी औसत पैदावार लगभग 4.5 -6.0 टन/हेक्टेयर तक है।

मध्यम अवधि की किस्में (120-125 दिन): इनमें मुख्य किस्में सरजू-52, पंत धान-10, पंत धान-12, आई आर-64 आदि प्रमुख हैं। इनकी औसत उपज लगभग 5.5-6.5 टन/हेक्टेयर है।

लम्बी अवधि वाली किस्में (130-140 दिन) : इस वर्ग में पूसा 44, पी आर 106, मालवीय-36, नरेन्द्र-359, महसुरी आदि प्रमुख किस्में हैं। इनकी औसत उपज लगभग 6.0-7.0 टन/हेक्टेयर है। इन किस्मों के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में लगाई जाने वाली कुछ प्रमुख किस्में जैसे आई आर 36, एम टी यू 7029 (स्वर्णा), एम टी यू 1001 (विजेता), एम टी यू 1010 (काटन डोरा संहालू), बी पी टी 5204 (साम्भा महसुरी), उन्नत सांभा महसुरी (पत्ती के झुलसा रोग के प्रतिरोधी), ललाट, ए डी टी 43 आदि हैं।

संकर किस्में: इनमें प्रमुख रूप से पंत संकर धान-1, के आर एच 2, पी एस डी 3, जी के 5003, पी ए 6444, पी ए 6201, पी ए 6219, डी आर आर एच 3, इंदिरा सोना, सुरूचि, नरेन्द्र संकर धान-2, प्रो. एग्रो. 6201, पी एच बी -71, एच आर आई -120, आर एच 204 संकर किस्में हैं। हाल ही में विश्व का प्रथम बासमती संकर धान पूसा राइस हाइब्रिड-10 (पी आर एच -10) पूसा, नई दिल्ली में विकसित किया गया है।

खेत की तैयारी एवं बुवाई

धान की खेती मुख्य रूप से निचली भूमियों में की जाती है। साथ ही धान को ऊंची भूमियों एवं गहरे पानी

में भी उगाया जाता है। धान उगाने की विभिन्न विधियों में से उत्तरी भारत के लिए धान सघनता पद्धति, एरोबिक धान पद्धति एवं रोपाई विधि अधिक महत्वपूर्ण है। अत: उपरोक्त तीनों विधियों का उल्लेख विस्तार से किया जा रहा है।

धान सघनता विधि (एस.आर.आई. पद्धति)

इस पद्धति को सिस्टम आफॅ राइस इन्टेंसिफिकेशन अथवा एसआरआई अथवा धान सघनता पद्धति के नाम से जाना जाता है। इस पद्धति से धान उगाने के लिए पौध की रोपाई योग्य उम्र 8-10 दिन अथवा अधिकतम 14 दिन संस्तुत की गई है। इस अवस्था की पौध को उखाड़ने एवं खेत में लगाने के बीच कम से कम समय होना चाहिए। खेत की तैयारी परंपरागत तरीके से की जाती है। खेत में पानी खड़ा करके मिट्टी पलटने वाले हल अथवा पडलर से 2-3 बार जुताई करके पाटा लगा देते हैं। पौध की रोपाई 25 सें.मी. × 25 सें.मी. अंतरण पर की जाती है और एक स्थान पर एक ही पौधा रोपा जाता है। इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि खेत में खड़ा हुआ पानी (जलाक्रांत) नहीं रखना है। खेत को हमेशा नमीयुक्त रखना आवश्यक है। बार-बार कुछ अंतराल पर हल्की सिंचाई करना एवं खेत को पानी रहित रखना पड़ता है ताकि मिट्टी में पर्याप्त वायु संचार हो सके। खरपतवार समस्या से निजात पाने के लिए हस्तचालित अथवा शक्तिचालित 'रोटेटिंग हो' का प्रयोग संस्तुत किया गया है। इस विधि से खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ मिट्टी में वायु संचार भी बढ़ता है जिससे कि जड़ों का विकास अच्छा होता है। साथ ही खरपतवार मिट्टी में मिल जाने के बाद उसमे जैव-पदार्थ की मात्रा बढ़ाते हैं जो कि लाभदायक जीवों की संख्या में वृद्धि करता है।

धान सघनता पद्धति में पोषक तत्वों की पूर्ति जैविक स्रोतों जैसे कम्पोस्ट, गोबर की खाद एवं हरी खाद आदि से की जानी चाहिए। यदि जैविक स्रोत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हों तो आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति उर्वरकों एवं जैविक स्रोतों दोनों के एकीकृत प्रयोग द्वारा की जा सकती है। परंपरागत तरीके से धान उगाने की तुलना में धान सघनता पद्धति से उगाने पर 1.5-3.0 गुनी तक अधिक पैदावार मिलती है तथा 30-40 प्रतिशत कम पानी की आवश्यकता होती है।

एरोबिक (वायवीय) धान

यह कम पानी उपलब्ध होने की परिस्थिति में धान उगाने की एक आधुनिक विधि है। अनुसंधान परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि एरोबिक धान की जल-उत्पादकता प्रचलित विधि से धान उगाने की तुलना में अधिक होती है। एरोबिक (वायवीय) विधि से धान उगाने के लिए अधिक उपज देने वाली प्रजातियों/संकरों की लेह रहित (अन-पडल्ड) दशा में सीड ड्रिल अथवा देसी हल से सीधे खेत में बुवाई करते हैं और गेहूं की भांति धान को उगाया जाता है। साथ ही आवश्यकतानुसार फसल में सिंचाई भी करते रहते हैं। धान की कुछ प्रजातियां/संकर जैसे अंजलि, प्रो एग्रो 6111, पी आर-1160, पी आर एच-10, पूसा 834, सुगंध-5 आदि को एरोबिक पद्धति से सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। पंक्तियों में देसी हल अथवा सीड ड्रिल से बुवाई करने पर 30-40 कि.ग्रा. / हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25 सें.मी. अधिक उपयुक्त पाई गई है। यदि खेत में नमी पर्याप्त न हो तो फसल को पलेवा करने के बाद बोया जाए अथवा बुवाई के तुरंत बाद एक हल्का पानी लगाना चाहिए। उत्तरी भारत में इसकी बुवाई का उपयुक्त समय जून का महीना है। एरोबिक धान के लिए 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की संस्तुति की गई है। एक-तिहाई नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस व पोटाश की संपूर्ण मात्रा बुवाई के समय कूड़ों में डालना अति लाभकारी है। नाइट्रोजन की शेष दो-तिहाई मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर कल्ले बनते समय और पुष्पावस्था पर देना चाहिए। नीम-लेपित यूरिया का प्रयोग करके धान में नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। फसल में बाली निकलने से लेकर पकने की अवस्था तक खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक होता है। शोध परिणामों से ज्ञात हुआ है कि प्रचलित धान उगाने की विधि की तुलना में एरोबिक धान में 40-45 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

एरोबिक धान में प्राय: लौह तत्व की उपलब्धता की समस्या आ सकती है। लौह तत्व की कमी के लक्षण पौधों पर इस प्रकार हैं- पत्तियों की शिराओं के बीच पीलापन आना, धीरे-धीरे संपूर्ण पत्तियों का पीला हो जाना और अंतत: पौधों के शेष भागों का पीला हो जाना आदि। जिन मृदाओं में लौह तत्व की कमी हो और फसल पर लौह तत्व की कमी प्रतीत हो तब 0.5 प्रतिशत फेरस सल्फेट या फेरस चिलेट्स का घोल कल्ले फूटने के उपरांत 15 दिन के अंतराल पर 2-3 बार छिड़क देना चाहिए। एरोबिक धान में खरपतवारों की बढ़वार भी प्राय: एक गंभीर समस्या होती है। बुवाई के 2-3 दिन के अंदर पेंडिमिथालिन 1 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से छिड़कने पर खरपतवारों की समस्या को कम किया जा सकता है। बुवाई के 20 दिन बाद 2, 4-डी. 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हेक्टेयर का छिड़काव चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की रोकथाम के लिए किया जा सकता है। एरोबिक धान में सूत्रकृमियों (निमैटोड्स) द्वारा हानि की भी प्रबल संभावना बनी रहती है। इनके नियंत्रण के लिए कार्बोफ्युरॉन 3 प्रतिशत जी की 25-30 कि.ग्रा./है. मात्रा का प्रयोग करें। कार्बोफ्युरॉन को अंकुरण के 20-30 दिन बाद डालें, परन्तु डालते समय यह सुनिश्चित कर लें कि खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

रोपाई विधि बीज की मात्रा एवं उपचार

बुवाई से पहले स्वस्थ बीजों की छंटनी कर लेनी चाहिए। इसके लिए 10 प्रतिशत नमक के घोल का प्रयोग करते हैं। नमक का घोल बनाने के लिए 2.0 कि.ग्रा. सामान्य नमक 20 लीटर पानी में घोल लें और इस घोल में 30 कि.ग्रा. बीज डालकर अच्छी तरह हिलाएं, इससे स्वस्थ एवं भारी बीज नीचे बैठ जाएंगे और थोथे एवं हल्के बीज ऊपर तैरने लगेंगे। इस तरह साफ व स्वस्थ छांटा हुआ 20 कि.ग्रा. बीज महीन दाने वाली किस्मों में तथा 25 कि.ग्रा. बीज मोटे दानों की किस्मों में एक हेक्टेयर की रोपाई के लिए पौध तैयार करने के लिए पर्याप्त होता है। बीज उपचार के लिए 10 ग्राम बॉविस्टीन और 2.5 ग्राम पोसामाइसिन या 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लीन या 2.5 ग्राम एग्रीमाइसीन 10 लीटर पानी में घोल लें। अब 20 कि.ग्रा. छांटे हुए बीज को 25 लीटर उपरोक्त घोल में 24 घंटे के लिए रखें। इस उपचार से जड़ गलन (फूट राट), झोंका (ब्लास्ट) एवं पत्ती झुलसा रोग (बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट) आदि बीमारियों के नियन्त्रण में सहायता मिलती है।

धान की नर्सरी की तैयारी एवं प्रबंधन

नर्सरी ऐसी भूमि में तैयार करनी चाहिए जो उपजाऊ, अच्छे जल निकास वाली व जल स्रोत के पास हो। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में धान की रोपाई के लिए 1/10 हेक्टेयर (1000 वर्ग मीटर) क्षेत्रफल में पौध तैयार करना पर्याप्त होता है। धान की नर्सरी की बुवाई का सही समय वैसे तो विभिन्न किस्मों पर निर्भर करता है। लेकिन 15 मई से लेकर 20 जून तक का समय बुवाई के लिए उपयुक्त पाया गया है। धान की नर्सरी भीगी विधि से पौध तैयार करने का तरीका उत्तरी भारत में अधिक प्रचलित है। इसके लिए खेत में पानी भरकर 2-3 बार जुताई करते हैं ताकि मिट्टी लेहयुक्त हो जाए तथा खरपतवार नष्ट हो जाएं। आखिरी जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें। जब मिट्टी की सतह पर पानी न रहे तो खेत को 1.25 से 1.50 मीटर चौड़ी तथा सुविधाजनक लम्बी क्यारियों में बांट लें ताकि बुवाई, निराई एवं सिंचाई की विभिन्न सस्य क्रियाएं आसानी से की जा सकें। क्यारियां बनाने के बाद पौधशाला में 5 सें. मी. ऊंचाई तक पानी भर दें और अंकुरित बीजों को समान रूप से क्यारियों में बिखेर दें। पौधशाला के 1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में लगभग 600-800 कि.ग्रा. गोबर की गली - सड़ी खाद, 8-12 कि.ग्रा. यूरिया, 15-20 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 5-6 कि.ग्रा. म्युरेट ऑफ पोटाश एवं 2-2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह से मिलाना चाहिए। जिन क्षेत्रों में लौह तत्व की कमी के कारण हरिमाहीनता (क्लोरोसिस) के लक्षण दिखाई दें, उन क्षेत्रों में 2-3 बार एक सप्ताह के अन्तराल पर 0.5 प्रतिशत फैरस सल्फेट के घोल का छिड़काव करने से हरिमाहीनता की समस्या को रोका जा सकता है।

पौधशाला में 10-12 दिन बाद निराई अवश्य करें। यदि पौधशाला में अधिक खरपतवार होने की संभावना

हो तो ब्युटाक्लोर 50 ई सी या बैन्थियोकार्ब नामक शाकनाशियों की 120 मि.ली. मात्रा 60 लीटर पानी में घोलकर 1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में बुवाई के 4-5 दिन बाद खरपतवार उगने से पहले छिड़क दें। पौधशाला में कीटों का प्रकोप होते ही थाइमेथोएट 30 ई सी 2 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़कना चाहिए। सामान्यत: जब पौध 21-25 दिन पुरानी हो जाए तथा उसमें 5-6 पत्तियां निकल जाएं तो यह रोपाई के लिए उपयुक्त होती है। पौध उखाड़ने के एक दिन पहले नर्सरी में अच्छी तरह से पानी भर देना चाहिए, जिससे पौध को आसानी से उखाड़ा जा सके तथा साथ ही साथ पौध की जड़ों को भी कम नुकसान हो।

पौध की रोपाई

रोपाई के लिए पौध उखाड़ने से एक दिन पहले नर्सरी में पानी लगा दें और पौध उखाड़ते समय सावधानी रखें। पौधों की जड़ों को धोते समय नुकसान न होने दें तथा पौधों को काफी नीचे से पकड़ें। पौध की रोपाई पंक्तियों में करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखनी चाहिए। एक स्थान पर 2 से 3 पौध ही लगाएं। इस प्रकार एक वर्ग मीटर में लगभग 50 पौधे होने चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

अधिक उपज एवं भूमि की उर्वरता शक्ति बनाये रखने के लिए हरी खाद या गोबर या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। हरी खाद हेतु सनई या ढ़ैंचे का प्रयोग किया गया हो तो नाइट्रोजन की मात्रा कम की जा सकती है, क्योंकि सनई या ढ़ैंचे से लगभग 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

उर्वरकों का प्रयोग भूमि परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। धान की बौनी किस्मों के लिए 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। बासमती किस्मों के लिए 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40-50 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20-25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। जबकि संकर धान के लिए 130-140 कि. ग्रा. नाइट्रोजन, 60-70 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50-60 कि. ग्रा. पोटाश एवं 25-30 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। यूरिया की पहली तिहाई मात्रा का प्रयोग रोपाई के 5-8 दिन बाद करें जब पौधे अच्छी तरह से जड़ पकड़ लें। दूसरी एक तिहाई यूरिया की मात्रा कल्ले फूटते समय (रोपाई के 25-30 दिन बाद) तथा शेष एक तिहाई हिस्सा फूल आने से पहले (रोपाई के 50-60 दिन बाद) खड़ी फसल में छिड़काव करके करें।

फॉस्फोरस की पूरी मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट या डाई अमोनियम फास्फेट (डी.ए.पी.) के द्वारा, पोटाश की भी पूरी मात्रा म्युरेट आफॅ पोटाश के माध्यम से एवं जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा धान की रोपाई करने से पहले अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला देनी चाहिए। यदि किसी कारणवश पौध रोपते समय जिंक सल्फेट खाद न डाला गया हो तो इसका छिड़काव भी किया जा सकता है। इसके लिए 15-20 दिनों के अन्तराल पर 3 छिड़काव 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने के घोल के साथ करने चाहिए। पहला छिड़काव रोपाई के एक महीने बाद करें। नाइट्रोजनधारी उर्वरक (यूरिया) बनाने वाली कंपनियों ने नीम लेपित यूरिया का निर्माण व्यवसायिक स्तर पर प्रारम्भ कर दिया है। आजकल यह उर्वरक बाजार में भी उपलब्ध है और किसानों द्वारा इसकी मांग दिनों दिन बढ़ती जा रही है। इस उर्वरक को बनाने के लिए नीम के तेल का इस्तेमाल किया जा रहा है।

जल प्रबंधन

धान की फसल के लिए सिंचाई की पर्याप्त सुविधा होना बहुत ही जरूरी है। सिंचाई की पर्याप्त सुविधा होने पर लगभग 5-6 सें.मी. पानी खेत में खड़ा रहना अति लाभकारी होता है। धान की 4 अवस्थाओं - रोपाई, ब्यांत, बाली निकलते समय तथा दाने भरते समय खेत में सर्वाधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है। इन अवस्थाओं पर खेत में 5-6 सें.मी. पानी अवश्य भरा रहना चाहिए। कटाई से 15 दिन पहले खेत से पानी निकाल कर सिंचाई बंद कर देनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

धान के खरतपवार नष्ट करने के लिए खुरपी या पेडीवीडर का प्रयोग किया जा सकता है। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवारनाशी दवाओं का प्रयोग करना चाहिए। धान के खेत में खरपतवार नियंत्रण के लिए कुछ शाकनाशियों का उल्लेख सारणी-1 में किया गया है।

सारणी 1: धान में खरपतवार नियंत्रण के लिए कुछ शाकनाशियों का ब्यौरा

खरपतवारनाशी रसायन	मात्रा (कि.ग्रा.) सक्रिय पदार्थ/है.	प्रयोग का समय
ब्युटाक्लोर	1.5-2.0	बुवाई/रोपाई के 3-4 दिन बाद
एनिलोफास	0.4-0.50	बुवाई/रोपाई के 3-4 दिन बाद
बैंथियोकार्ब	1.0-1.50	बुवाई/रोपाई के 3-4 दिन बाद
पेंडीमेथालिन	1.0-1.50	बुवाई/रोपाई के 3-4 दिन बाद
आक्साडायजान	0.75-1.0	बुवाई/रोपाई के 3-4 दिन बाद
आक्सीफ्लोरफेन	0.15-0.25	बुवाई/रोपाई के 3-4 दिन बाद
प्रेटिलाक्लोर	0.50-1.0	बुवाई/रोपाई के 3-4 दिन बाद
2,4-डी	0.5-1.0	बुवाई/रोपाई के 25-30 दिन बाद
फेनाक्जाफाप	0.06-0.07	बुवाई के 20-25 दिन बाद
बिस्पाइरिबैक	0.02-0.03	बुवाई के 15-25 दिन बाद

खरपतवारनाशी रसायनों की आवश्यक मात्रा को 600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से समान रूप से छिड़काव करना चाहिए।

समेकित कीट प्रबंधन

पौध फुदके

पौध फुदके भूरे, काले एवं सफेद रंग के छोटे-छोटे कीट होते हैं जिनके शिशु व वयस्क दोनों ही पौधों के तने व पर्णाच्छद से रस चूसकर फसल को हानि पहुंचाते हैं। फसल पर इस कीट की निगरानी बहुत जरूरी है क्योंकि फुदके तने पर होते हैं तथा पत्तों पर नहीं दिखते। इनकी निगरानी के लिए प्रकाश-प्रपंच (लाइट ट्रैप) का प्रयोग भी किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल 1 मि.ली./3 लीटर पानी या थायोमेथोक्ज़म 25 डब्ल्यू पी 1 ग्राम/5 लीटर या बीपीएमसी 50 ईसी 1 मि.ली./ली. या कार्बेरिल 50 डब्ल्यू पी 2 ग्राम/लीटर या बुप्रोफ़ेज़िन 25 एस सी 1 मि.ली./ली. पानी का छिड़काव करें। छिड़काव करते समय नोज़ल पौधों के तनों पर रखें। दानेदार कीटनाशी जैसे कार्बोफ्युरान 3 जी 25 कि.ग्रा./है. या फिप्रोनिल 0.3 जी 25 कि.ग्रा./हेक्टेयर भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

तना छेदक

तना छेदक की केवल सूंडियां ही फसल को हानि पहुंचाती हैं तथा वयस्क पतंगे फूलों के शहद आदि पर निर्वाह करते हैं। बाली आने से पहले इनके हानि के लक्षणों को 'डेड-हार्ट' तथा बाली आने के बाद 'सफेद बाली' के नाम से जाना जाता है। प्रकाश प्रपंच के उपयोग से तना छेदक की संख्या पर निगरानी रखें। निगरानी के लिए फेरोमोन प्रपंच 5 प्रति हेक्टेयर पीला तना छेदक के लिए लगाएं। रोपाई के 30 दिन बाद *ट्राइकोग्रामा जैपोनिकम* (ट्राइकोकार्ड) 1-1.5 लाख प्रति हेक्टेयर प्रति सप्ताह की दर से 2-6 सप्ताह तक छोड़ें। आवश्यकतानुसार दानेदार कीटनाशी जैसे कार्बोफ्युरॉन 3 जी या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी या फिप्रोनिल 0.3 जी 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें अन्यथा क्लोरोपायरीफॉस 20 ईसी 2 मि.ली./लीटर या क्विनलफॉस 25 ईसी 2 मि.ली./लीटर या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 50 एसपी 1 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें।

पत्ता लपेटक

इस कीट की भी केवल सूंडियां ही फसल को हानि पहुंचाती हैं जबकि वयस्क पतंगे फूलों के शहद पर जिंदा रहते हैं। सूंडी पत्तों के दोनों किनारों को सिलकर इनके हरे पदार्थ को खा जाती है। अधिक प्रकोप की अवस्था में फसल झुलसी नजर आती है। प्रकाश-प्रपंच के प्रयोग से कीट की निगरानी करें। *ट्राइकोग्रामा काइलोनिस* (ट्राइकोकार्ड) 1-1.5 लाख प्रति हेक्टेयर प्रति सप्ताह की दर से 30 दिन रोपाई उपरांत 3-4 सप्ताह तक छोड़ें। आवश्यकतानुसार क्विनलफॉस 25 ई सी 2.5 मि.ली./

लीटर या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई सी 2.5 मि.ली./लीटर या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 50 एसपी 1 मि.ली./लीटर या फ्लूबैंडिमाइड 39.35 एससी 1 मि.ली./5 लीटर पानी का छिड़काव करें अन्यथा दानेदार कीटनाशी कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का प्रयोग भी कर सकते हैं।

हिस्पा भृंग

नीले-काले रंग के वयस्क भृंग पत्तों के हरे पदार्थ को खाकर सीढ़ीनुमा सफेद लकीरें बनाते हैं जबकि सूंडियां पत्तों के अंदर भूरे रंग की सुरंगें बना देती हैं। आवश्यकतानुसार क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई सी 2.5 मि.ली./लीटर पानी या क्विनलफॉस 25 ईसी 3 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें या कार्बारिल धूल 25-30 कि.ग्रा./है. की दर से बुरकाव करें।

गंधी बग

यह कीट खेत में दुर्गन्ध फैलाता है, अत: इसे गंधी बग कहा जाता है। इसके शिशु व वयस्क दोनों ही दूधिया अवस्था में दानों से रस चूसकर इन्हें खाली कर देते हैं। ऐसे दानों पर काला निशान भी बन जाता है। आवश्यकतानुसार क्विनलफॉस 25 ई सी 3 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव करें अन्यथा कार्बारिल या मिथाइल पैराथियान धूल 25-30 कि.ग्रा./हेक्टेयर बुरकाव करें।

सैनिक कीट (झुंड में पाई जाने वाली सूंडी)

इस कीट की केवल सूंडियां ही फसल को नुकसान करती हैं जबकि पतंगे फूलों से रस चूसते हैं। सूंडियां नर्सरी में पौध को इस तरह कुतर कर खा जाती हैं जैसे इन्हें जानवरों ने चर लिया हो। खेत में यह कीट पत्तों की मध्य शिराओं को छोड़ते हुए पूरे पत्तों को चट कर जाता है। प्रकाश-प्रपंच का प्रयोग कर कीटों को एकत्र कर नष्ट कर दें। आवश्यकतानुसार क्लोरोपायरीफॉस 20 ई सी 2.5 मि.ली./लीटर या क्विनलफॉस 25 ई सी 3 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव करें अन्यथा कार्बारिल या मैलाथियान धूल 25-30 कि.ग्रा./हेक्टेयर बुरकाव करें।

ग्रास हॉपर

इस कीट के फुदकने वाले शिशु व वयस्क पत्तों को इस तरह खाते हैं जैसे कि पशु चर गए हों। गर्मी में धान के खेतों की मेड़ों की खुरचाई करें ताकि इस कीट के अंडे नष्ट हो जाए। इस कीट की साल में एक ही पीढ़ी होती है तथा अंडे नष्ट कर देने से इसका प्रकोप काफी कम हो जाता है। आवश्यकतानुसार क्लोरोपायरीफॉस 20 ई सी 2.5 मि.ली./लीटर या क्विनलफॉस 25 ई सी 3 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें अन्यथा कार्बारिल या मिथाइल पैराथियान धूल 25-30 कि.ग्रा./है. का बुरकाव करें।

रोग प्रबंधन

ब्लास्ट, बदरा या झोंका रोग

यह रोग फफूंद से फैलता है। पौधों के सभी भाग इस बीमारी द्वारा प्रभावित होते हैं। वृद्धि अवस्था में यह रोग पत्तियों पर भूरे धब्बे के रूप में दिखाई देता है। इनके धब्बों के किनारे कत्थई रंग के तथा बीच वाला भाग राख के रंग का होता है। रोग के तेजी से आक्रमण होने पर बाली का आधार भी ग्रसित हो जाता है। इस अवस्था को ग्रीवा गलन कहते हैं, जिसमें बाली आधार से मुड़कर लटक जाती हैं। फलत: दाने का भराव भी पूरा नहीं हो पाता है।

प्रबंधन

1. ट्राइसायक्लेजोल (बीम 75 डब्ल्यू पी 2 ग्रा. रसायन/कि.ग्रा. बीज) उपचारित बीज बोएं।
2. जुलाई के प्रथम पखवाड़े में रोपाई पूरी कर लें। देर से रोपाई करने पर झोंका रोग के लगने की संभावना बढ़ जाती है।
3. यदि पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देने लगें तो कार्बेन्डाजिम 1000 या ट्राइसायक्लेजोल 500 ग्रा. का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर एक हेक्टेयर में छिड़काव करें।

पत्ती का जीवाणु झुलसा रोग

यह बीमारी जीवाणु के द्वारा होती है। पौधों की छोटी अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक यह बीमारी कभी

भी हो सकती है। इस रोग में पत्तियों के किनारे ऊपरी भाग से शुरू होकर मध्य भाग तक सूखने लगते हैं। सूखे पीले पत्तों के साथ-साथ राख के रंग के चकत्ते भी दिखाई देते हैं। संक्रमण की उग्र अवस्था में पूरी पत्ती सूख जाती है। अंततः बालियां दानों रहित रह जाती है।

प्रबंधन

1. उपचारित बीज का प्रयोग करें। इसके लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (2.5 ग्रा.) + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (25 ग्राम) प्रति 10 लीटर पानी के घोल में बीज को 12 घंटे तक डुबोएं।
2. इस बीमारी के लगने की अवस्था में नाइट्रोजन का प्रयोग कम कर दें।
3. जिस खेत में बीमारी लगी हो उसका पानी दूसरे खेत में न जाने दें। इससे बीमारी के फैलने की आशंका होती है। साथ ही उस खेत को भी पानी न दें।
4. खेत में बीमारी को फैलने से रोकने के लिए खेत से समुचित जल निकास की व्यवस्था की जाए तो बीमारी को काफी हद तक निर्यंत्रित किया जा सकता है।
5. बीमारी के नियंत्रण के लिए 74 ग्राम एग्रीमाइसीन-100 और 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (फाइटोलान/ ब्लाइटाक्स-50/क्यूप्राविट) को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से तीन-चार बार छिड़काव करें। पहला छिड़काव रोग प्रकट होने पर तथा आवश्यकतानुसार 10 दिन के अन्तराल पर करें।

गुतान झुलसा (शीथ ब्लाइट)

यह बीमारी फफूंद के द्वारा होती है। इसके प्रकोप से पत्ती के शीथ (गुतान) पर 2-3 सें.मी. लम्बे हरे से भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो कि बाद में चलकर भूसे के रंग के हो जाते हैं। धब्बों के चारों तरफ बैंगनी रंग की पतली धारी बन जाती है।

प्रबंधन

कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम या शीथमार-3 (1.5 लीटर) या हेक्साकोनाजोल (कॉन्टाफ) 1000 मि.ली. दवा 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

खैरा रोग

यह बीमारी जस्ते की कमी के कारण होती है। इसके लगने पर निचली पत्तियां पीली पड़नी शुरू हो जाती हैं और बाद में पत्तियों पर कत्थई रंग के छिटकवां धब्बे उभरने लगते हैं। रोग की तीव्र अवस्था में रोग ग्रसित पत्तियां सूखने लगती हैं। कल्ले कम निकलते हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधन

1. यह बीमारी न लगे इसके लिए 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई से पहले खेत की तैयारी के समय डालना चाहिए।
2. बीमारी लगने के बाद इसकी रोकथाम के लिए 5 कि. ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. चूना 600-700 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर में छिड़काव करें। अगर रोकथाम न हो तो 10 दिन बाद पुनः छिड़काव करें।

कटाई एवं मड़ाई

बालियां निकलने के लगभग एक माह बाद सभी किस्में पक जाती हैं। कटाई के लिए जब 80 प्रतिशत बालियों में 80 प्रतिशत दाने पक जाएं और उनमें नमी 20 प्रतिशत हो, वह समय उपयुक्त होता है। कटाई दरांती से जमीन की सतह पर व ऊसर भूमियों में भूमि की सतह से 15-20 सें.मी. ऊपर से करनी चाहिए। मड़ाई के बाद दानों की सफाई के बाद धान के दानों को अच्छी तरह सुखाकर ही भण्डारण करना चाहिए। भण्डारण से पूर्व दानों को 10 प्रतिशत नमी तक सुखा लेते हैं।

उपज

समस्त उपर्युक्त सस्य क्रियाओं व किस्म अपनाने पर शीघ्र पकने वाली किस्मों की प्रति हेक्टेयर औसत उपज 40 से 50 क्विंटल, मध्यम व देर से पकने वाली किस्मों से प्रति हेक्टेयर उपज 50 से 60 क्विंटल एवं संकर धान से प्रति हेक्टेयर औसत उपज 60-70 क्विंटल प्राप्त होती है।

□□

अरहर का बीजोत्पादन

ओ.आर. फारुकी एवं आर.एस. राजे
आनुवंशिक संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

अरहर दलहनी फसलों में एक विशेष स्थान रखती है। अरहर की दाल में लगभग 20-21 प्रतिशत तक प्रोटीन पाई जाती है, साथ ही इस प्रोटीन का पाच्यमूल्य भी अन्य प्रोटीन से अच्छा होता है। अरहर की दीर्घकालीन प्रजातियाँ मृदा में 20.0 कि.ग्रा. तक वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण कर मृदा उर्वरकता एवं उत्पादकता में वृद्धि करती हैं। शुष्क क्षेत्रों में अरहर किसानों द्वारा प्राथमिकता से बोई जाती है। असिंचित क्षेत्रों में इसकी खेती लाभकारी सिद्ध हो सकती है, क्योंकि गहरी जड एवं अधिक तापक्रम की स्थिति में पत्ती मुड़ने के गुण के कारण यह शुष्क क्षेत्रों में सर्व उपयुक्त फसल है। बिहार, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, कर्नाटक एवं आंध्र प्रदेश, देश के प्रमुख अरहर उत्पादक राज्य हैं।

उन्नतशील प्रजातियाँ

शीघ्र पकने वाली प्रजातियां: यू.पी.ए.एस. 120, पूसा 855, पूसा 33, पूसा अगेती, पूसा 991, पूसा 992, पूसा 2001, पूसा 2002

मध्यम समय में पकने वाली प्रजातियां: टाइप 21, जवाहर अरहर 4, आई.सी.पी.एल. 87119 (आशा), वी. ए.सी.एम.आर. 583

देर से पकने वाली प्रजातियां: बहार, पूसा 9, शरद, माल 13, एन.डी.ए. 1

हाईब्रिड प्रजातियाँ: पी.पी.एच. 4, आई.सी.पी.एच. 8

रबी बुवाई के लिए उपयुक्त प्रजातियां: बहार, शरद (डी ए-11), पूसा 9

बुआई का समय तथा विधि: शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की बुआई जून के प्रथम पखवाड़े में तथा मध्यम व देर से पकने वाली प्रजातियों की बुआई जून के द्वितीय पखवाड़े से लेकर 15 जुलाई तक करें। बुआई सीडड्रिल या हल से करनी चाहिए, तथा वर्षा पूर्व की बुआई सितम्बर के प्रथम सप्ताह में करें।

भूमि का चुनाव: अच्छे जलनिकास व उच्च उर्वरता वाली दोमट भूमि सर्वोतम रहती है। खेत में पानी का ठहराव फसल को भारी हानि पहुँचाता है।

खेत की तैयारी: मिट्टी पलट हल से एक गहरी जुताई के उपरान्त 2-3 जुताई हल अथवा हैरो से करना उचित रहता है। प्रत्येक जुताई के बाद सिंचाई एवं जल निकास की पर्याप्त व्यवस्था हेतु पाटा देना आवश्यक है।

उर्वरक

मृदा परीक्षण के आधार पर समस्त उर्वरक अन्तिम जुताई के समय हल के पीछे कूंड़ में बीज की सतह से 2 सें.मी. गहराई व 5 सें.मी. साइड में देना सर्वोत्तम रहता है। प्रति हेक्टेयर 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फास्फोरस, 20 कि.ग्रा. पोटाश व 20 कि.ग्रा. गंधक की आवश्यकता होती है। जिन क्षेत्रों में जस्ता की कमी हो वहाँ पर 15-20

कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रयोग करें। नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की समस्त भूमियों में आवश्यकता होती है, किन्तु पोटाश एवं ज़िंक का प्रयोग मृदा परीक्षण उपरान्त खेत में कमी होने पर ही करें। नत्रजन एवं फास्फोरस की संयुक्त रूप से पूर्ति हेतु 100 कि.ग्रा. डाई अमोनियम फास्फेट एवं गंधक की पूर्ति हेतु 100 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति है. का प्रयोग करने पर अधिक उपज प्राप्त होती है।

बीजशोधान

मृदाजनित रोगों से बचाव के लिए बीजों को 2 ग्रा. थीरम व 1 ग्रा. कार्बेन्डाजिम प्रति कि.ग्रा. की दर से शोधित करके बुआई करें। बीजशोधन बीजोपचार से 2-3 दिन पूर्व करें।

बीजोपचार

10 कि.ग्रा. अरहर के बीज के लिए राइजोबियम कल्चर का एक पैकेट पर्याप्त होता है। 50 ग्रा. गुड़ या चीनी को 1/2 ली. पानी में घोलकर उबाल लें। घोल के ठंडा होने पर उसमें राइजोबियम कल्चर मिला दें। इस कल्चर में 10 कि.ग्रा. बीज डालकर अच्छे प्रकार से मिला लें ताकि प्रत्येक बीज पर कल्चर का लेप चिपक जाए। उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर, दूसरे दिन बोया जा सकता है। उपचारित बीजों को कभी भी धूप में न सुखायें, व बीज उपचार दोपहर के बाद करें।

दूरी

पंक्ति से पंक्ति: 45-60 सें.मी. (शीघ्र पकने वाली), 60-70 सें.मी. (मध्यम व देर से पकने वाली) तथा 30-45 सें.मी. (रबी, सितम्बर फसल के लिए)।

पौधा से पौधा: 10-15 सें.मी. (शीघ्र पकने वाली), 15-20 सें.मी. (मध्यम व देर से पकने वाली) तथा 15 सें.मी. (सितम्बर फसल के लिए)।

बीज दर: 12-15 कि.गा. प्रति है.।

सिंचाई एवं जल निकास

चूँकि फसल असिंचित अवस्था में बोई जाती है अत: लम्बे समय तक वर्षा न होने पर एवं पूर्व पुष्पीकरण अवस्था तथा दाना बनते समय फसल की आवश्कतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। उच्च अरहर उत्पादन के लिए खेत में उचित जलनिकास का होना प्रथम शर्त है, अत: निचले एवं अधो जलनिकास की समस्या वाले क्षेत्रों में मेंड़ों पर बुआई करना उत्तम रहता है।

खरपतवार नियंत्रण

प्रथम 60 दिनों में खेत में खरपतवार की मौजूदगी अत्यन्त नुकसानदायक होती है। हाथ या खुरपी से दो निकाइयाँ करने पर प्रथम बोआई के 25-30 दिन बाद एवं द्वितीय 45-60 दिन बाद खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के साथ मृदा वायु संचार में वृद्धि होने से फसल एवं सह जीवाणुओं की वृद्धि हेतु अनुकुल वातावरण तैयार होता है। किन्तु यदि पिछले वर्षों में खरपतवारों की गम्भीर समस्या रही हो तो अन्तिम जुताई के समय खेत में वासालिन की एक कि.ग्रा. सक्रिय मात्रा को 800-1000 ली. पानी में घोलकर या लासो की 3 कि.ग्रा. मात्रा को बीज अंकुरण से पूर्व छिड़कने से पूर्व खरपतवारों पर प्रभावी नियंत्रण पाया जा सकता है।

फसल सुरक्षा

कीट नियंत्रण

फली मक्खी/फली छेदक: क्यूनालफास 25 ई.सी. 15 एम.एल./मोनोक्रोटोफास 30 डब्ल्यू.एस.सी. 11 एम.एल. प्रति 10 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए तथा एक हेक्टेयर में 1000 ली. घोल का प्रयोग करना चाहिए।

पत्ती लपेटक: मोनोक्रोटोफास 36 डब्ल्यू.एस.सी. 11 एम.एल. प्रति 10 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।

मारुका: एवॉट (इन्डाक्साकार्ब) 1 मि.ली. प्रति ली. या एनाकॉडा 1800 मि.ली./है. (750 ली. पानी प्रति है.) में प्रयोग करना चाहिए।

रोग नियंत्रण

फाइटोप्थोरा ब्लाइट: बीज को रिडोमिल 2 ग्रा./कि.ग्रा. बीज से उपचारित करके बोयें। जहाँ इस बीमारी का प्रकोप अधिक हो, वहाँ रोगरोधी प्रजातियां जैसे आशा, मारुति, बी.एस.एम.आर. 175 तथा वी.एस.एम.आर. 736 का चयन करना चाहिए।

विल्ट: प्रतिरोधी प्रजातियों का उपयोग करें, बीज शोधित कर के बायें। मृदा का सौर्यीकरण करें अर्थात् बैसाख में खेत को जोत कर खुला छोड़ दें।

बन्ध्यमोजैक: प्रतिरोधी प्रजातियाँ जैसे शरद, बहार, आशा, एम.ए.-3, मालवीय अरहर-1 आदि बोयें। रोगी पौधों को जला दें। वाहक कीट (अर्थात जिनके द्वारा बीमारी का प्रसार होता है) के नियंत्रण हेतु मेटासिस्टाक्स का छिड़काव करें।

कटाई एवं मड़ाई

80 प्रतिशत फलियों के पक जाने पर फसल की कटाई गंड़ासे या हँसिया से 10 सें.मी. की उंचाई पर करना चाहिए। तत्पश्चात् फसल को सूखने के लिए बण्डल बनाकर खलिहान में लाते हैं। फिर चार से पांच दिन सुखाने के पश्चात् पुलमेन थ्रेशर द्वारा या लकड़ी के लट्ठे पर पिटाई करके दानों को भूसे से अलग कर लेते हैं।

उपज

उन्नत विधि से खेती करने पर 15-20 कुन्तल प्रति है. दाना एवं 50-60 कुन्तल लकड़ी प्राप्त होती है।

भंडारण

भंडारण हेतु नमी का प्रतिशत 10-11 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। भंडारण में कीटों से सुरक्षा हेतु एल्युमिनियम फास्फाइड की 2 गोली प्रति टन प्रयोग करें।

□□

उत्तम बीज उत्पादन में मूलभूत तकनीक

शिव कुमार यादव, अरुण कुमार एम. बी., मंजूनाथ प्रसाद सी.टी.
एवं विकास ए. टोणापी
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भूमि का चुनाव

उत्तम बीज उत्पादन हेतु जल निकासी साधन, स्वयं उगने वाले (वोलेंटीयर प्लांट) पौधों से मुक्त व अच्छी उर्वरता (फर्टीलिटी) वाली भूमि का चुनाव करना चाहिए। वालेंटीयर पौधों की समस्या व आपत्तिजनक (ऑब्जेक्शनेबल) खरपतवारों का खेत में भारी संक्रमण होने पर ऐसे खेत को बीज उत्पादन हेतु प्रयोग में नहीं लाया जाता।

पृथक्करण दूरी

बीज उत्पादन हेतु बीज खेत को संक्रमण योग्य अन्य प्रजातियों व फसलों से उचित दूरी पर अलग रखा जाता है। पर-परागित फसलों में हवा व कीटों से होने वाले पर-परागण द्वारा आनुवंशिक संक्रमण परागण की निर्धारित न्यूनतम दूरी पर (पृथक्करण दूरी) रखकर रोका जा सकता है। स्व: परागित फसलों में जैसे गेहूं, धान हेतु यह दूरी 3 मीटर तथा मूंग, उड़द, लोबिया, चना, मसूर व मटर के आधार बीज उत्पादन हेतु 10 मीटर रखी जाती है जबकि पर-परागित फसल जैसे बाजरे में यह दूरी 1000 मीटर रखी जाती है। आमतौर पर पृथक्करण दूरी फसल का प्रजनन व्यवहार, परागण करने वाले कीटों जैसे मधुमक्खी, हवा की रफ्तार एवं दिशा तथा फसल द्वारा परागण पैदा करने की क्षमता पर निर्भर करती है। एक ही फसल परिवार (फैमिली) में भी उचित पृथक्करण दूरी रखनी आवश्यक होती है जैसे सरसों की फसलों के बीज उत्पादन हेतु शलजम की फसल से उचित दूरी रखनी चाहिए। कुछ खरपतवारों से भी बीज उत्पादन खेत को पृथक्करण दूरी पर रखने की आवश्यकता होती है जैसे ज्वार के आधार व प्रमाणित बीज उत्पादन कार्य में जोन्सन घास के पौधे से 400 मीटर की पृथक्करण दूरी रखनी चाहिए। कभी-कभी बीज जनित रोगों से बचाव हेतु भी पृथक्करण दूरी पर दो फसलों का बीजोत्पादन किया जाता है जैसे गेहूं में गेहूं की दूसरी प्रजाति से पृथक्करण दूरी 3 मीटर रखी जाती है जब कि गेहूं के बीज फसल को कंडुवा (काली-बाली) रोग से बचाव हेतु ट्रिटिकल व राई फसल से 150 मीटर को पृथक्करण दूरी पर रखना आवश्यक है।

बुआई की विधियां

उत्तम बीज उत्पादन हेतु बीज फसल को सीड ड्रिल द्वारा सीधी लाइनों में बुआई करनी चाहिए। इससे फसल में सस्य क्रियाएं, निराई-गुड़ाई व निरीक्षण के कार्य में आसानी होगी। एक प्रजाति को बोने से पूर्व व बाद में सीड ड्रिल की अच्छी तरह सफाई करें। उसमें कोई अन्य प्रजाति का बीज न हो व ड्रिल के पाईप, बीज कप व बीजनाली को अच्छी तरह साफ करें। बुआई के समय यह निश्चित करें कि किसी भी प्रकार का भौतिक अपमिश्रण न हो पाए। गेहूं फसल के बीज उत्पादन में सीड ड्रिल (9 खुरपे सहित) में बीच का बीज वितरण पाईप को बन्द कर देते हैं ताकि एक लाइन में बीज न पड़े। खड़ी फसल में इस खाली लाईन में घूमकर अवांछित पौधों को खेत से निष्कासित करते हैं। इस प्रकार हर आठ बोई लाईन के बाद एक लाईन की जगह खाली रहती है। यह विधि काफी प्रभावशाली व सुविधाजनक पाई गई है।

सस्य क्रियाएं

सभी सस्य क्रियाएं जैसे नर्सरी बुआई हेतु तैयारी, खाद एवं उर्वरक डालना, खरपतवार रोकथाम हेतु निराई-गुड़ाई, सिंचाई आदि को बीज उत्पादन हेतु व्यवसायिक खेती की भांति अच्छी तरह वैज्ञानिक अनुमोदन अनुसार प्रबंध करते हैं, व्यापारिक या सामान्य फसल की अपेक्षा बीज फसल

में फास्फोरस व पोटाश उर्वरकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इनकी अनुमोदित मात्रा का प्रयोग करें जिससे बीज सुडौल व चमकदार होगा। इसके अलावा जिंक तत्व का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग करना आवश्यक है। खड़ी फसल के पौधे गिरने पर प्रभावकारी तरीके से अवांछित भिन्न पौधों का निष्कासन व फसल निरीक्षण कार्य कठिन हो जाता है। फलतः फसल/खेत के प्रमाणीकरण में कठिनाई आती है और यदि एक तिहाई से ज्यादा पौधे गिरे हों तो फसल प्रमाणीकरण के लिए मान्य नहीं मानी जाती।

अवांछनीय पौधों को निकालना

फसल प्रजाति से भिन्न पौधों को निकाल बाहर करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। जिसके बिना प्रजातीय शुद्धता प्राप्त करना असंभव है। कोई भी ऐसा पौधा जो प्रजाति के गुणों से मेल नहीं खाता हो, भिन्न पौधा कहलाता है। यह भिन्नता पौधों के गुणों जैसे पौधे की लम्बाई, फूल खिलने का समय (दिनों में), मोमी परत होना, रंग में भिन्न, बाली आकार, रंग व आकृति आदि के कारण हो सकती है। पर-परागित फसलों में ऐसे भिन्न पौधों का निष्कासन फूल आने से पूर्व करें जिससे भिन्न पौधों के परागण से होने वाले संक्रमण से बचा जा सके। फसल के जीवन काल में कई बार फसल कटाई तक यह निष्कासन कार्य चलता है। अन्य फसलों के पौधे, आपत्तिजनक खरपतवार या अन्य पौधे, बीमारी व कीटग्रस्त पौधे को तुरन्त खेत से निष्कासित करें। जिस दिन तेज हवाएं हो, यथासंभव ऐसे दिन रोगिंग न करें व रोगिंग करने वाले व्यक्ति की पीठ सूर्य की दिशा में हो जिससे भिन्न पौधों को आसानी से पहचाना जा सके।

खेत निरीक्षण (इन्सपेक्शन)

आधार व प्रमाणित बीज को बीज प्रमाणीकरण संस्था की देख-रेख व अनुमोदन में पैदा किया जाता है। प्रमाणीकरण संस्था के सदस्यों एवं कर्मचारियों द्वारा समय-समय पर बीज खेत का निरीक्षण किया जाता है। वह बीज खेत जो निरीक्षण के दौरान खेत व बीज मानकों के स्तर का होता है, को ही प्रमाणीकरण के लिए अनुमोदित किया जाता है।

फसल कटाई व गहाई उपरांत बीज संसाधन

फसल की कटाई उचित समय पर बीज पूर्ण परिपक्व होने व उचित बीज नमी पर करें जिससे बीजों को कम से कम हानि पहुंचे।

उत्तम फसल बीज उत्पादन हेतु किए गए सभी उपाय जैसे भिन्न पौधे निष्कासन व इससे पूर्व की गई फसल की देख-रेख आदि व्यर्थ हो जायेंगे, अगर हम फसल कटाई, गहाई, संसाधन, बीज उपचार व थैलाबन्दी के दौरान उचित सावधानियां नहीं अपनाते हैं। इन सभी प्रक्रियाओं के दौरान सही लेबल लगाना भी आवश्यक है। विभिन्न प्रजातियों के बीज की कटाई व रख रखाव के दौरान थ्रेशर, कम्बाईन हारवेस्टर, ट्राली, थ्रेसिंग फर्श, बीज संसाधन की मशीनें पूर्णतया साफ सुथरी व अन्य फसल/किस्म बीज रहित हों। बीज को अवांछित नमी से मुक्त करने के लिए सुखाया जाता है, प्रसंसाधन सयंत्र में बीजों को मशीनों की एक श्रृंखला से गुजारा जाता है। प्रत्येक मशीन अपने कार्य के अनुसार अवांछित पदार्थों का एक भाग अच्छे बीज से अलग कर देती है।

बीज परीक्षण, लेबल लगाना व भण्डारण

बीज की गुणवत्ता का मूल्यांकन करने के लिए बीज परीक्षण आवश्यक है। बीजों की भौतिक शुद्धता, अंकुरण क्षमता व स्वास्थ्य परीक्षण हेतु बीजों के नमूने राज्य या केन्द्र की बीज अधिसूचित परीक्षण प्रयोगशाला में परीक्षण (टेस्टिंग) के लिए भेजे जाते हैं। बीज परीक्षण में सुनियोजित विधियों से इनके गुणों की सख्ती से निष्पक्ष जांच की जाती है। बीज परीक्षण रिपोर्ट बीज अधिनियम 1966 के तहत स्थापित मानकों के अनुरूप पाये जाने पर ही बीज राशि को अनुमोदित किया जाता है तथा टैग (लेबल) प्रमाण पत्र बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा बीज उत्पादक को जारी कर दिया जाता है। यह प्रमाण पत्र प्रारम्भिक प्रमाणीकरण के उपरांत नौ माह तक वैध रहती है। यदि पुनः बीज परीक्षण में यह उचित मानकों पर खरा उतरता है तो इस वैधता की अवधि को 6 माह तक बढ़ाया जा सकता है। प्रत्येक प्रमाणिक बीज राशि को बोरों में भरकर सफेद रंग के लेबल को आधार बीज के बोरों के ऊपर सिलाई करते हैं। प्रमाणित बीज पर नीला लेबल व प्रजनक बीज के बोरों पर सुनहरा पीला लेबल लगाया जाता है, जिन पर सूचनाएं अंकित होती है। बीज का रखरखाव व भण्डारण वैज्ञानिक तरीके से किया जाए व भण्डारण में इसे कीट व चूहों से बचाकर रखा जाये। बीज का भण्डारण हमेशा सूखे व ठण्डे स्थान पर करना चाहिए।

□□

बीज उत्पादन इकाई - उन्नत बीजों का स्रोत

बी.एस. तोमर, रमेश चन्द, संजय सिंह, सुशील दत्त, राजेश कुमार, संदीप कुमार एवं संजीव कुमार शर्मा

बीज उत्पादन इकाई, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

फसल उत्पादन में गुणवत्ता बीजों का महत्व दिनों -दिन बढ़ता जा रहा हैं। फसल उत्पादन की सारी लागत जैसे- उन्नत कृषि तकनीकी, उर्वरक, सिंचाई तथा पादप सुरक्षा रसायनों के प्रयोग का वांछित लाभ तब तक पूरी तरह से नहीं लिया जा सकता है तब तक उन्नत प्रजातियों के उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का इस्तेमाल नहीं किया जायेगा। अभी भी हमारे बहुत किसान फसल उत्पादन के लिए साधारण अनाज का इस्तेमाल बीज के रूप में कर रहें हैं जबकि गुणवत्ता बीज से अधिक उपज एवं उच्च गुणवत्ता के उत्पाद पैदा कर सकते हैं। बीज प्रकृति की अमूल्य देन है जो रूप एवं आकार में बहुत छोटा होता है, लेकिन उसमें अत्यंत शक्तियाँ विद्यमान होती हैं। छोटा सा बीज बरगद जैसे विशाल पेड़ को जन्म देता है। एक कहावत भी है - **''जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे''।** इसी आशय को ध्यान में रखते हुऐ भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में स्थित बीज उत्पादन इकाई द्वारा विकसित किस्मों के उच्च गुणवत्ता बीजों को पैदा करने पर बहुत ध्यान दे रही है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा वर्ष 2006-2007 में लागू महा बीज परियोजना उन्नत बीजों के महत्व को दर्शाती है। इस योजना के फल स्वरूप फसलों के बीजों के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है। बीज उत्पादन का ज्ञान फसल उत्पादन के बाद प्रारम्भ हुआ। जैसे-जैसे खाद्यान्न एवं बागवानी फसलों की मांग बढ़ती गई, वैसे-वैसे बीज उत्पादन की महत्ता एवं उत्पादन तथा मांग भी बढ़ती गई। उत्पादन के कारकों में बीज का महत्व 10-20 प्रतिशत तक माना गया है। परन्तु, यह महत्व अधिक उत्पादन देने वाली प्रजातियों के अनुसंधान के बाद और भी बढ़ गया है।

गुणवत्ता बीज के लक्षण: उत्पादन के समय खेत के मानक तालिका-1 तथा बीज के मानक तालिका-2 में दर्शाये गये हैं। गुणवत्ता बीज के लक्षण निम्न प्रकार हैं-

1. गुणवत्ता बीज आनुवंशिक रूप में शुद्ध होते हैं तथा आनुवंशिक शुद्धता का स्तर 99.5 प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए। हाथ द्वारा उत्पादित सब्जी (संकरों) में आनुवंशिक शुद्धता 90 प्रतिशत होती है।
2. गुणवत्ता बीज भौतिक रूप से बीज मानकों के अनूरूप शुद्ध होते हैं तथा अधिकांश बीजों में भौतिक शुद्धता का स्तर 98 प्रतिशत होता है।
3. बीज जमाव बीज मानक के न्युनतम स्तर के बराबर या अधिक होते हैं।
4. बीज प्रजातिय लक्षणों के अनुरूप होते हैं जिसके कारण अधिक उपज एवं गुणयुक्त रहते हैं।
5. गुणवत्ता बीज जलवायु की भिन्नता के कारण कम से कम प्रभावित होते हैं।
6. उन्नत बीजों में बीमारियों के प्रकोप को कम करने या बचने की प्रवृत्ति होती है।
7. उन्नत बीजों में निराई-गुड़ाई, सिंचाई एवं उर्वरक आदि के अधिक से अधिक उपयोग करने की क्षमता होती है।
8. गुणवत्ता बीज अन्य फसलों तथा प्रजातियों के बीजों की मिलावट से मुक्त होते हैं।
9. गुणवत्ता बीजों में एकरूपता होती है।

तालिका 1: बीज शुद्धता के लिए खेत के मानक

फसल का नाम	बीज का प्रकार	प्रथक्करण दूरी (मी.)	निरीक्षण की संख्या	अवांछनीय पौधों की संख्या (%)	अन्य फसलों के पौधे (%)	बीज जनित बीमारी के पौधे (%)	आपत्ति जनक खरपतवारों के पौधे (%)
धान	आधार	3	2	0.20	–	–	0.10
	प्रमाणित	3	2	0.50	–	–	0.20
मूँग	आधार	10	2	0.10	–	–	–
	प्रमाणित	5	2	0.20	–	–	–
अरहर	आधार	200	2	0.10	–	–	–
	प्रमाणित	100	2	0.20	–	–	–
बाजरा	आधार	400	3	0.50	–	0.50	–
	प्रमाणित	200	3	0.10	–	0.10	–
मक्का	आधार	400	2	1	–	–	–
	प्रमाणित	200	2	1	–	–	–
चना	आधार	10	2	0.10	–	–	–
	प्रमाणित	5	2	0.20	–	–	–
गेहूँ	आधार	3	2	0.05	0.01	0.10	–
	प्रमाणित	3	2	0.20	0.05	0.50	–
सरसों	आधार	200	3	0.10	–	–	0.01
	प्रमाणित	100	3	0.50	–	–	0.05
शलगम*	आधार	1600	4	0.10	–	–	–
मूली	प्रमाणित	1000	4	0.20	–	–	–
फूल गोभी	आधार	1600	3	0.10	–	0.10	–
	प्रमाणित	1000	3	0.20	–	0.50	–
टमाटर	आधार	50	3	0.10	–	0.10	–
	प्रमाणित	25	3	0.20	–	0.50	–
बैंगन	आधार	200	3	0.10	–	0.10	–
	प्रमाणित	100	3	0.20	–	0.50	–
गाजर*	आधार	1000	4	0.01	–	–	–
	प्रमाणित	800	4	0.05	–	–	–
मेथी	आधार	50	2	0.10	–	–	–
	प्रमाणित	25	2	1.00	–	–	–
प्याज*	आधार	1000	4	0.10	–	–	;
	प्रमाणित	500	4	0.20	–	–	–
लौकी	आधार	1000	3	0.10		–	–
	प्रमाणित	500	3	0.20	–	–	–
करेला	आधार	1500	4	–	–	–	–
	प्रमाणित	1000	4	–	–	–	–
लोबिया	आधार	10	2	0.10	–	–	–
	प्रमाणित	5	2	0.20	–	–	–
तोरई	आधार	1500	4	–	–	–	–
	प्रमाणित	1000	4	–	–	–	–
गेंदा	आधार	600	3	0.01	0.01	0.01	0.01
	प्रमाणित	300	3	0.05	0.05	0.05	0.05

*मूली, शलगम, गाजर तथा प्याज की जड़ें शल्क कंद पैदा करते समय 2 निरीक्षण तथा बीज उत्पादन के दौरान 2 निरीक्षण आवश्यक हैं। इनकी जडें शल्क कंद पैदा करने के लिए 5 मीटर की प्रथक्करण दूरी आवश्यक हैं।

तालिका 2: प्रमुख फसलों के बीज मानक

फसल का नाम	बीज का प्रकार	भौतिक शुद्धता (%)	अन्य पदार्थ (%)	अन्य फसलों के बीज (अधिकतम) प्रति कि. ग्रा.	कुल फसलों के बीज (अधिकतम) प्रति कि. ग्रा.	आपत्ति जनक खरपतवार के बीज (अधिकतम) प्रति कि. ग्रा.	अंकुरण (%)	सामान्य पैकिंग में नमी (%)	पोलीथीन में नमी (%)
धान	आधार	98	2	10	10	2	85	13	8
	प्रमाणित	98	2	20	20	5	80	13	8
मूँग	आधार	98	2	5	5	–	75	9	8
	प्रमाणित	98	2	10	10	–	75	9	8
अरहर	आधार	98	2	5	5	–	75	9	8
	प्रमाणित	98	2	10	10	–	75	9	8
बाजरा	आधार	97	3	10	10	–	75	12	8
	प्रमाणित	97	3	20	20	–	75	12	8
चना	आधार	98	2	–	–	–	85	9	8
	प्रमाणित	98	2	5	–	–	85	9	8
गेहूँ	आधार	98	2	10	10	2	85	12	8
	प्रमाणित	98	2	20	20	5	85	12	8
सरसों	आधार	97	3	10	10	5	85	8	5
	प्रमाणित	97	3	20	20	10	85	8	5
शलगम,	आधार	98	2	5	5	–	70	6	5
मूली	प्रमाणित	98	2	10	10	–	70	6	5
फूलगोभी	आधार	98	2	5	5	–	65	7	5
	प्रमाणित	98	2	10	10	–	65	7	5
टमाटर	आधार	98	2	5	–	–	70	8	6
	प्रमाणित	98	2	10	–	–	70	8	6
बैंगन	आधार	98	2	–	–	–	70	8	6
	प्रमाणित	98	2	–	–	–	70	8	6
गाजर	आधार	95	2	5	5	–	60	8	7
	प्रमाणित	95	2	10	10	–	60	8	7
मेथी	आधार	98	2	10	10	2	70	8	6
	प्रमाणित	98	2	20	20	5	70	8	6
प्याज	आधार	98	2	10	10	–	70	8	6
	प्रमाणित	98	2	20	20	–	70	8	6
लौकी	आधार	98	2	–	–	–	60	7	6
	प्रमाणित	98	2	–	–	–	60	7	6
लोबिया	आधार	98	2	–	–	–	75	9	8
	प्रमाणित	98	2	10	10	–	75	9	8
करेला	आधार	98	2	–	–	–	60	7	6
	प्रमाणित	98	2	–	–	–	60	7	6
तोरई	आधार	98	2	–	–	–	60	7	6
	प्रमाणित	98	2	–	–	–	60	7	6
गेंदा	आधार	97	3	10	5	–	70	9	7
	प्रमाणित	97	3	20	10	–	70	9	7

पूसा बीज कब और कैसे खरीदें?

पूसा बीज किसी भी कार्य दिवस पर (दूसरे शनिवार, प्रत्येक रविवार तथा राजपत्रित अवकाश को छोड़कर) 10 बजे से 4 बजे के बीच बुवाई के समय से 1-2 महीने पूर्व खरीदे जा सकते हैं। बीज नकद या डिमांड ड्राफ्ट के द्वारा **''पहले आओ पहले पाओ''** की नीति के आधार पर **एटिक तथा बीज उत्पादन इकाई**, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, फोन 011-25841670 एवं 011-25842686 एवं अध्यक्ष भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, कुन्जपुरा रोड़, करनाल (हरियाणा), से प्राप्त किये जा सकते हैं। बीज उत्पादन इकाई में सब्जी तथा प्रमुख फसलों की उन्नत प्रजातियों के बीजों की सामयिक उपलब्धता तालिका-3 तथा 4 में दर्शायी गई है।

बीजों की शुद्धता बनाये रखने के उपाय

बीजों की शुद्धता बनाये रखना एक अत्यन्त महत्व पूर्ण एवं नैतिकता से भरा कार्य है। बीज को अपने जीवन चक्र में तीन अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है। अत: अशुद्धता आने का अवसर इन्हीं स्थानों पर होता है। बीज उत्पादन में निम्न तीन अवस्थाओं पर सावधानी बरतने से बीज की शुद्धता बनाई रखी जा सकती है, जैसे-

1. खेत में उत्पादन के समय

उत्पादन के दौरान निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए-

- बुवाई के लिए शुद्ध एवं मान्य बीजों का प्रयोग करना चाहिए।
- बुवाई से पहले बीज का उपचार करना चाहिए तथा उपचार के लिए थिरम, कैप्टान या बाविस्टीन आदि का इस्तेमाल किया जा सकता है।
- बुवाई के लिए बीज की निधारित मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।
- शुद्ध बीज पैदा करने के लिए एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति के बीच निर्धारित पृथक्करण दूरी रखनी चाहिए।

तालिका 3: शाकीय फसलों के बीजों की सामयिक उपलब्धता

फसल का नाम	प्रजाति का नाम	बुवाई का उत्तम समय	बीज की मात्रा (कि./है.)	उत्पादन (कु./है.)	प्रजनक बीज का विक्रय मूल्य (₹/किग्रा.)	पूसा बीज विक्रय मूल्य (₹/किग्रा.)
शलगम	पूसा श्वेती	15 सितम्बर से 15 नवम्बर	2.50-3.0	160	340.00	320.00
फूलगोभी	पूसा मेघना	15 मई-05 जुलाई	0.60-0.70	150	1320.00	1200.00
सेम	पूसा सेम-3	15 जून-जुलाई	8.0-10.0	95	200.00	150.00
टमाटर	पूसा रोहिणी	15 अक्टूबर-15 जनवरी	0.6-0.75	430	1820.00	1600.00
प्याज	पूसा माधवी	15 अक्टूबर-15 नवम्बर	10.00	400-425	790.00	700.00
	पूसा रेड					
मूली	पूसा चेतकी	सितम्बर-15 अक्टूबर	5.00-6.00	170	400.00	300.00
सरसों साग	पूसा साग-1	15 सितम्बर-नवम्बर	3.00-4.00	400	-	150.00
मेथी	पूसा कसूरी	अक्टूबर-नवम्बर	6-8	90-100	130.00	120.00
	पूसा अर्ली बंचिग	अक्टूबर-नवम्बर	25-30	70-80	130.00	120.00
मटर	पूसा प्रगति	15 अक्टूबर-15 नवम्बर	100-125	65-70	120.00	80.00
पालक	आल ग्रीन	सितम्बर-नवम्बर	25-30	400-500	120.00	90.00
	पूसा भारती					
बैंगन	पूसा उत्तम	मई-जून	0.50-0.75	400	860.00	800.00
गाजर	पूसा रूधिरा	15 सितम्बर-15 नवम्बर	10-12	320	530.00	450.00
लौकी	पूसा समृद्धि	जनवरी-फरवरी	2.50-3.0	325	470.00	450.00
लोबिया	पूसा सुकोमल	जुलाई-अगस्त	30-35	70	180.00	140.00
करेला	पूसा विशेष	जनवरी-फरवरी	2.50-3.0	150	600.00	450.00
गेंदा	पूसा नारंगी गेंदा	15 सितम्बर-अक्टूबर	0.5-0.7	250-300	6000.00	5000.00
	पूसा बसंती गेंदा	15 सितम्बर-अक्टूबर	0.5-0.7	200-250	6000.00	5000.00

तालिका 4: विभिन्न फसलों के बीजों की सामयिक उपलब्धता

फसल का नाम	प्रजाति का नाम	बुवाई का समय	बीज की मात्रा (कि./है.)	उत्पादन (कु./है.)	प्रजनक बीज का विक्रय मूल्य (₹/कि.ग्रा.)	पूसा बीज विक्रय मूल्य (₹/कि.ग्रा.)
गेहूँ (समय से बोई जाने वाली प्रजातियां)	एच. डी. 2733	10-25 नवंम्बर	100	50.00	40.00	30.00
	एच. डी. 2967			50.00		
	एच. डी. 2894			52.00		
गेहूँ (पछेती प्रजातियां)	एच. डी. 2851	25 नवम्बर से	125	56.00		
	एच. डी. 2643	10 दिसम्बर		37.00		
	एच. डी. 2932			41.70		
गेहूँ (अति पछेती प्रजातियां)	एच. डी. 2987	10-30 दिसम्बर	125	18.00		
	एच. डी. 2985			37.74		
	डब्ल्यू आर. 544			37.30		
सरसों (अगेती प्रजातियां)	पूसा सरसों-25	01-15 सितम्बर	4.5	14.70	68.00	65.00
	पूसा सरसों-26			17.50		
	पूसा अग्रणी			17.50		
	पूसा महक			17.50		
सरसों (समय से बोई जाने वाली प्रजातियां)	पूसा विजय	10-25 अक्टूबर	4.5	25.00	68.00	65.00
	पूसा जगन्नाथ			25.00		
	पूसा बोल्ड			19.00		
	पूसा जयकिसान			25.00		
	पूसा आदित्य			14.00		
	पूसा तारक			19.24		
चना (देसी प्रजातियां)	पूसा-5028	20 अंक्टूबर से 15 नवम्बर	75-100	26.00	70.00	65.00
	पूसा-391			20-25		
	पूसा-372			25.30		
	पूसा-256			22-30		
	पूसा-547			18.00		
	पूसा-1103			20-24		
	बी.जी.डी-72			17.00		
चना (काबुली प्रजातियां)	पूसा-1053	20 अंक्टूबर से 15 नवम्बर	100-125	25.30	90.00	80.00
	पूसा-1003			15-23		
	पूसा-1108			30.35		
	पूसा-1105			25.00		
	पूसा-5023			25.00		
	पूसा-1088			25.35		
	पूसा-2024			25-30		
मूँग	पूसा विृाल	मार्च-अप्रेल	15-20	12-15	99.00	85.00
अरहर	पूसा-991	15 मई-10 जून	15-20	18.45	90.00	88.00
	पूसा-992			16.50		
	पूसा-2001			20.00		
	पूसा-2002			20.00		
बाजरा	पूसा संकर-605	जुलाई	2	24.00	-	70.00
धान	पी.आर.एच-10	20 मई से 20 जून	12-15	65-70	-	200.00
	पूसा बासमती-1121			45-50	63.00	55.00
	पूसा-2511			60-65	63.00	45.00
	पूसा बासमती-1			50-55	63.00	50.00
	पूसा-1460			50-55	63.00	50.00
	पूसा बासमती-1401			50-55	63.00	55.00
	पी.एन.आर-381, 519,162			50-55	37.80	28.00
	जल्दी धान-13			30-35	37.80	28.00
	पूसा-44			60-65	35.70	32.00

- उर्वरकों की निर्धारित मात्रा फसल के अनुसार प्रयोग करनी चाहिए।
- फसल में उचित समय पर सिंचाई करनी चाहिए।
- उचित अवस्थाओं पर फसल का निरीक्षण करके अवांछनीय पौधों को निकाल देना चाहिए।
- शुद्ध बीज पैदा करने के लिए कीट तथा बीमारियों से फसल को बचाने के लिए रसायनों की निर्धारित मात्रा का प्रयोग उचित समय पर करना चाहिए।
- बीज फसल को खरपतवार से रहित रखना चाहिए।
- फसल की कटाई पूर्ण परिपक्व अवस्था पर करनी चाहिए।

2. खलिहान में शुद्धता बनाये रखना

खेत के बाद बीज खलिहान में आता है और इस दौरान भी मिश्रण होने की सम्भावना रहती है, अत: इसके लिए निम्न उपायों का ध्यान रखना चाहिए-

- खलिहान को पूर्ण रूप से खरपतवार तथा अन्य फसलों के बीजों से रहित कर लेना चाहिए।
- खलिहान ऊँचे स्थान पर होना चाहिए।
- खलिहान का स्थान खुला हुआ तथा प्रकाश युक्त होना चाहिए।
- एक जाति की थ्रेसिंग के बाद तथा दूसरी जाति की थ्रेसिंग से पूर्व थ्रेसिंग मशीन, कम्बाइन तथा पंखों आदि की सफाई पूर्ण रूप से करनी चाहिए।
- बीज की श्रेणीकरण करते समय भी मशीनों की अच्छी प्रकार सफाई कर लेनी चाहिए।
- बीज सुखाने की जगह का फर्श दरार रहित होना चाहिए। फर्श की सफाई सावधानी पूर्वक करनी चाहिए।

3. बीज गोदाम में शुद्धता बनाये रखना

फसल की थ्रेसिंग तथा श्रेणीकरण के बाद बीज भण्डार गृह में लाया जाता है। फसल की कटाई के बाद दोबारा बुवाई के बीच जो अन्तर होता है, उस समय में बीज को सुरक्षित गोदाम में रखना पड़ता है। अत: गोदाम में बीज की शुद्धता बनाये रखने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए-

- बीज को गोदाम में रखने से पूर्व अच्छी प्रकार साफ सफाई करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो प्रति वर्ष गोदाम में सफेदी करनी चाहिए।
- बीज गोदाम में किसी प्रकार की दरारें आदि नहीं होनी चाहिए।
- बीज को गोदाम में रखने से पूर्व श्रेणीकरण करके बीज में नमी की निर्धारित मात्रा होने पर ही भण्डार गृह में रखना चाहिए।
- बीज को भरने के लिए हमेशा नई बोरियों का प्रयोग करना चाहिए। यदि पुरानी बोरियों का प्रयोग करना पड़े तो उन्हें अच्छी प्रकार झाड़कर डेल्टामेथ्रिन के 5 प्रतिशत धोल में बोरियों को डुबोकर धूप में अच्छी प्रकार सुखाकर प्रयोग में लायें।
- बोरियों में बीज की निर्धारित मात्रा भरकर सिलाई करके टैग लगाकर भण्डारित करना चाहिए। बोरी के ऊपर तथा टैग के ऊपर फसल का नाम, प्रजाति का नाम, उत्पादक का नाम, उत्पादन का वर्ष तथा लोट न0 आदि लिखा होना चाहिए।
- भण्डार गृह में बीज की बोरियों की हमेशा दीवारों से एक फीट की दूरी पर 6 इंच ऊंचे लकड़ी या प्लास्टिक की आकृति पर रखना चाहिए।
- समय-समय पर बीज गोदाम की सफाई तथा आवश्यकता पड़ने पर डेल्टामेथ्रिन या न्युवान का छिडकाव 5 मि. ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर दीवारों, छतों तथा फर्श पर करना चाहिए।
- वर्षा ऋतु के समय 3 ग्राम सल्फास की गोली प्रति वर्ग मी. स्थान या 3 ग्राम की 2-3 गोली प्रति टन बीज के हिसाब से धुमन करना चाहिए। धुमन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बीज गोदाम सील बन्द हो ताकि गैस बाहर न निकले। धुमन के दस दिन बाद गोदाम की खिड़कियाँ तथा दरवाजे खोल देने चाहिए ताकि स्वच्छ हवा का आवागमन हो सके।

□□

अरहर की खेती में वास्तविक और संभावित उपज में अन्तर - कारण तथा उपाय

राम बहाल, मनजीत सिंह नैन, नारायण वी. कुम्भारे और शान्तनू कुमार दूबे
कृषि विस्तार संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत की दलहनी फसलों में अरहर (तूर) का प्रमुख स्थान है। यह खरीफ ऋतु में उगाई जाती है। अरहर की दाल में प्रोटीन 24.6 प्रतिशत, शर्करा 5.2 प्रतिशत, और वसा 1.6 प्रतिशत होता है। अरहर की 100 ग्राम दाल से 57.6 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 335 किलो कैलोरी उर्जा, 16.3 मिली ग्राम कैल्शियम, 78.9 मिली ग्राम मैग्नीशियम, 1.3 मिली ग्राम कापर, 2.9 मिली ग्राम लोहा तथा 3 मिली ग्राम जिंक मिलता है। इसके अतिरिक्त बिटामिन ए 469 मिली ग्राम, बी1 0.3 मिली ग्रम, बी 20.3 मिली ग्राम और सी 25.0 मिली ग्राम मिलता है। इसके तने को ग्रामीण क्षेत्रों में जलावन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसकी पत्तियों तथा फलियों के छिलकों को भूसे के रूप में पालतू पशुओं को खिलाने के लिए प्रयोग किया जाता है। दो दालों वाली फसल होने के कारण, इसकी जडें मूसलादार होती हैं। इससे जमीन में पर्याप्त मात्रा में बायोमास मिलता है जो सड़ कर दूसरी फसलों के लिए खाद का काम करता है। अरहर का समर्थन मूल्य भी धान, गेहूँ जैसी खाद्यान्नों से अधिक है तथा अरहर में धान और गेहूँ जैसी फसलों की तुलना में उत्पादन खर्च भी कम लगता है।

भारत के अतिरिक्त अरहर की खेती विश्व के अन्य कई देशों जैसे मायनमार, मलाव, उगांणा, नेपाल, तंजानिया और किनिया में की जाती है। विश्व के अरहर उत्पादन के क्षेत्रफल में भारत का हिस्सा 75 प्रतिशत, और उत्पादन का हिस्सा 65.2 प्रतिशत है। परंतु भारत की अरहर की उपज की दर कई अन्य देशों की तुलना में काफी कम है जो तालिका 1 में देखा जा सकता है। भारत के किसानों को यह जानने की आवश्यकता है कि हमारे देश की अरहर की उपज दूसरे देशों की तुलना में कम क्यों है ?

अरहर की उपरोक्त सभी अच्छाइयों के बावजूद यदि अरहर और धान दोनों खरीफ फसलों की तुलना करें तो न केवल किसानों का अपितु वैज्ञानिकों का झुकाव भी धान की तरफ ज्यादा और अरहर की तरफ कम लगता है। इसलिए यह जरूरी समझा गया कि इसकी जानकारी हासिल की जाय कि किसान अरहर की नवीनतम तकनीकों और सिफारिशों को क्यों नहीं अपना पाते और उपलब्ध तकनीकी ज्ञान का लाभ क्यों नहीं ले पाते ? तलिका 2 से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजादी के बाद से जिस दर से धान का क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज बढी है उस दर से अरहर का क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज नहीं बढी । धान की बहुत सारी प्रजातियाँ निकलीं, कृषि यंत्र बने परंन्तु अरहर के लिए न ही पर्याप्त प्रजातियाँ निकलीं, न कृषि यंत्र और न ही कीट नियंत्रण के लिए यंत्र एवं प्रभावशाली कीटनाशी बने ।

कृषि योग्य जमीन अब बढने वाली नहीं है, इसलिए जितने क्षेत्रफल में जो फसलें उगाई जा रही हैं, उनकी उत्पादकता उसी क्षेत्रफल से शोध द्वारा सिफारिश की गई तकनीकों को अपना कर बढाने की अति आवश्यकता है जिससे प्रति व्यक्ति उपयुक्त मात्रा में दालें उपलब्ध हो सकें।

तालिका 1: दूसरे देशों की तुलना में भारत में अरहर का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता (2009)

देश	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	प्रतिशत (शेयर)	उत्पादन (टनों में)	प्रतिशत (शेयर)	उपज (किलो ग्राम /हेक्टेयर में)
मायनमार	605000	13.4	765000	21.9	1264.4
मलावी	181953	4.0	206021	5.9	1132.2
उगांडा	90000	1.9	91000	2.6	1011.1
नेपाल	20883	0.4	18152	0.5	869.2
तनजानिया	51650	1.1	37610	1.0	728.1
भारत	3380000	75.0	2270000	65.2	671.5
कीनिया	118167	2.6	46474	1.3	393.2
अन्य	53843	1.1	45958	1.3	
विश्व	4501496	100	3480215	100	773.1

स्रोत: एफ ए ओ साँख्यिकी

तालिका 2: अरहर और धान की फसलों के क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज की तुलना

वर्ष	अरहर			धान		
	क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर	उत्पादन (मिलियन टन)	उपज (किलो ग्रम / हेक्टेयर)	क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर)	उत्पादन (मिलियन टन)	उपज (किलो ग्रम / हेक्टेयर)
1950-51	2.18	1.72	788	30.81	20.58	668
1960-61	2.43	2.07	849	34.13	34.58	1013
1970-71	2.66	1.88	709	37.59	42.22	1123
1990-81	2.84	1.96	689	40.15	53.63	1336
1990-91	3.59	2.41	673	42.69	74.29	1740
2000-01	3.63	2.25	618	44.71	84.98	1901
2010-11	4.42	2.89	655	42.56	95.33	2240

स्रोत: आर्थिक और सांख्यिकी निदेशालय, कृषि और सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार

तालिका 3 से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजादी के बाद वर्ष 1951 में प्रति व्यक्ति प्रति दिन खाद्यान्न की उपलब्धता जो 334.2 ग्राम प्रतिदिन थी, से बढ कर वर्ष 2010 में 407 ग्राम प्रतिदिन तो हो गई लेकिन दालों की उपलब्धता जो वर्ष 1951 में 60.7 ग्राम प्रतिदिन थी वह लगातार कम होती गई और वर्ष 2010 में केवल 31.6 ग्राम प्रतिदिन रह गई । उत्पादकता कम होने के कारण दालों की माँग बढती गई। फलत: दालों का मूल्य बहुत बढ गया और देश को अन्य दाल उत्पादक देशों से आयात करने का दौर शुरू हो गया । तालिका 4 में वर्ष 2080-81 से 2007-08 तक भारत में आयात की गई दालों की मात्रा और मूल्य को दर्शाया गया है।

भारतीय कृषि अनुसंन्धान संस्थान के कृषि प्रसार विभाग में एक अनुसंधान के तहत दो मुद्दों पर शोध की

तालिका 3: भारत में प्रति व्यक्ति प्रति दिन खाद्यान्न की उपलब्धता (ग्राम प्रति दिन)

(20.07.2010 को)

वर्ष	खाद्यान्न	दालें	कुल खाद्यान्न
1951	334.2	60.7	394.9
1961	399.7	69.0	468.7
1971	417.6	51.2	468.8
1981	417.3	37.5	454.8
1991	468.5	41.6	510.1
2001	386.2	30.0	416.2
2009	407.0	37.0	444.0
2010	407.0	31.6	444.0

स्रोत: आर्थिक और सांख्यिकी निदेशालय, कृषि और सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय भारत सरकार

तालिका 4: भारत में वर्ष 1980-81 से 2007-08 तक आयात की गई दालों की मात्रा और मूल्य

वर्ष	मात्रा (000 टन में)	मूल्य (करोड़ों रूपया में)
1980-81	172.96	29.76
1985-86	431.44	189.06
1990-91	1273.43	481.17
1995-96	485.65	685.55
2000-01	350.57	500.06
2005-06	1692.52	2477.29
2007-08	2791.10	5278.00

स्रोत: डी जी सी आई, कोलकता

गई। जिसके पहले भाग में भारत में अरहर उगाए जाने वाले प्रदेशों को उनके अरहर के क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज के अन्तर के आधार पर चार मुख्य श्रेणी में विभाजित किया गया। प्रथम श्रेणी के वे प्रदेश हैं जो अरहर के लिए उपजाऊ भी हैं और वहाँ वास्तविक और संभावित उपज का अंन्तर मी कम है। इसमें अरहर के लिए बिहार प्रथम श्रेणी का प्रदेश है। यह अधिक उपजाउ तथा कम वास्तविक और संभावित उपज के अन्तर (28.63) का प्रदेश है। इसका तात्पर्य यह है कि बिहार अरहर उत्पादन के लिए बहुत उत्तम प्रदेश है जहाँ वास्तविक और संभावित उपज का अंन्तर केवल 28.63 प्रतिशत है। इसका अर्थ यह भी है कि यदि बिहार में अरहर का क्षेत्रफल बढाया जाय तो न केवल अरहर का उत्पादन और उपज शीघ्र बढाई जा सकती है बल्कि उपज का अंन्तर भी कम किया जा सकता है ।

दूसरी श्रेणी के वे प्रदेश हैं जिनमें अरहर की उपज और उत्पादन बढाने की झमता भी अधिक है तथा अधिकतम संभावित उपज और वास्तविक उपज मे अंन्तर भी अधिक है। ये प्रदेश हैं महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, और गुजरात। महाराष्ट्र में संभावित और वास्तविक उपज का अंन्तर 41.18 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 42.13 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश में 50.34 प्रतिशत, और गुजरात में 35.54 प्रतिशत है। इन प्रदेशों में शोध तथा प्रसार व्यवस्था को मजबूत करके अरहर की उपज बढाई जा सकती है और अधिकतम संभावित उपज और वास्तविक उपज का अंन्तर कम किया जा सकता है।

तीसरी श्रेणी के अरहर उगाए जाने वाले वे प्रदेश हैं जहाँ वास्तविक उपज और संभावित उपज का अंन्तर कम है। ये प्रदेश उड़ीसा, कर्नाटक, और झारखंड हैं। उड़ीसा में वास्तविक और संभावित उपज का अंन्तर 2.94 प्रतिशत, कर्नाटक में 31.40 प्रतिशत और झारखंड में 21.18 प्रतिशत है।

चौथी श्रेणी के अरहर उगाए जाने वाले वे प्रदेश हैं जहाँ न केवल उपज का स्तर कम है बल्कि वास्तविक और संभावित उपज का अंन्तर भी अधिक है । वे प्रदेश हैं तमिलनाडु और मध्य प्रदेश । तमिलनाडु में वास्तविक और संभावित उपज का अंन्तर 33 प्रतिशत और मध्य प्रदेश मे 37.96 प्रतिशत है।

अध्ययन का दूसरा पहलू यह ज्ञात करना था कि इन प्रदेशों में सिफारिश की गई तकनीक का किसानों द्वारा कितना प्रतिशत प्रयोग किया जाता है। फार्म के संसाधनों का अरहर की खेती के लिए की गई सिफारिशों का केवल

5.4 प्रतिशत का प्रयोग किया जाता है जब कि 94.6 प्रतिशत सिफारिशों का प्रयोग नही किया जाता। बीज तथा बीज से संम्बन्धित सिफारिशों का केवल 25.3 प्रतिशत प्रयोग किया जाता है जब कि 74.7 प्रतिशत सिफारिशों का प्रयोग नहीं किया जाता। शस्य विधियों की सिफारिशों का केवल 58.3 प्रतिशत प्रयोग किया जाता है जब कि 41.7 प्रतिशत सिफारिशों का प्रयोग नहीं किया जाता। खादों और उर्वरकों मे भी सिफारिशों का केवल 12.8 प्रतिशत प्रयोग किया जाता है जब कि 87.2 प्रतिशत सिफारिशों का प्रयोग नहीं किया जाता। फसल सुरक्षा में 18.6 प्रतिशत सिफारिशों का प्रयोग होता है। बाकी 81.4 प्रतिशत सिफारिशों का प्रयोग नहीं होता है। अंन्तत: कटाई तथा रखरखाव में 45.6 प्रतिशत सिफारिशों का प्रयोग होता है। बाकी 54.4 प्रतिशत सिफारिशों का प्रयोग नही होता है। 43.8 प्रतिशत सिफारिशों के बदले किसान कुछ अन्य तकनीक का प्रयोग करते हैं तथा 31.1 प्रतिशत सिफारिशों का प्रयोग बिल्कुल ही नहीं होता। इन परिस्थितियों में अरहर की अधिकतम संभावित उपज कैसे ली जा सकती है ?

अरहर की खेती में महाराष्ट्र में (62 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश में (60 प्रतिशत) और आन्ध्र प्रदेश में (60 प्रतिशत) जो समस्याएँ आती हैं उनमें पहली समस्या सिफारिश की गई प्रजाति का बीज गाँवों में या आस-पास न मिलना। दूसरी समस्या खारे पानी तथा सिंचाई की असुविधा, तीसरी समस्या जैविक उर्बरकों का न उपलब्ध होना, चौथी समस्या रसायनिक खादों का समय पर गाँव या गाँव के आस-पास न मिलना, मिट्टी और पानी परीक्षण का गाँव के आस-पास केन्द्र न होना, गाँव के आस पास न कीटनाशक मिलते हैं न उन्हें प्रयोग करने के तरीके का ज्ञान है। जानकारी से संबंघित समस्याओं में सिफारिश की गई बुआई की बिधि तथा पलेवा, जैविक कीट नियंत्रण, जैव उर्वरक, जैविक खरपतवार नियंत्रण, रासायनिक खादों की मात्रा, बीज उपचार के तरीके, क्षेत्र के लिए सिफारिश की गई प्रजाति, सिंचाई का मुख्य समय,बीज की उपयुक्त मात्रा आदि हैं। संसाधनों से संबंघित समस्याओं में सरल भाषा के साहित्य, प्रशिक्षण, तथा तकनीकी सुझाव, भंण्डारण का अभाव उपयुक्त तकनीक का न होना, सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं की अनभिज्ञता, विपणन की समस्या तथा गाँवों में कमजोर प्रसार व्यवस्था आदि हैं। इसके अतिरिक्त अन्य समस्याओं में जंगली पशुओं जैसे नील गाय और सुअर से फसल का बहुत नुकसान होता है।

यदि देश को दलहन में आत्मनिर्भर करना है तो शोध, प्रसार, प्रशिक्षण एवं संसाधनों को गाँव स्तर तक उपलब्ध कराना आवश्यक होगा। साथ ही साथ किसानों की मानसिकता धान और गेहूँ की तरफ से अरहर और चना की तरफ मोडना होगा । क्योंकि अरहर और चना में धान और गेहूँ से अधिक लाभ होता है और कम श्रम तथा उत्पादन लागत लगती है। शोध द्वारा सिफारिश की गई तकनीकों को अपना कर और उपरोक्त समस्याओं को हल करके संभावित उपज और वास्तविक उपज में अंन्तर को कम किया जा सकता है।

□□

समृद्ध भारत के लिए कृषि व्यापार - वैश्विक चुनौतियाँ एवं उपाय

संगीता यादव[1], शिव कुमार यादव[2] एवं एम. दत्ता[3]

[1,3]राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली

[2]भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अधिक से अधिक पाबंदी मुद्र-बंधमुद्र है। इस दृष्टि से सन 1947 में गैट की स्थापना हुई। गैट का मुख्य सिद्धान्त है, बिना भेदभाव के एक तरह से खुले व्यापार की स्थापना करना, जिससे खुली बहुपक्षीय प्रणाली के विकसित किया जा सके। यह प्रणाली उन सब देशों के, जिन्होंने इस समझौते पर हस्ताक्षर किए, सर्वाधिक कृपा प्राप्त देशों के लिए बनाए गए नियमों के तहत, सभी को एक साथ जोड़ती है। सर्वाधिक कृपा प्राप्त देश का मतलब यह है शुल्क एवं अन्य नियम जो वस्तुओं के आयात और निर्यात के लिए बने हैं। वे सभी देशों में सामान रूप से बिना किसी भेदभाव के लागू होते हैं। जब गैट नहीं था तब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का अस्तित्व भी नहीं था लेकिन 1994 में जब गैट के तहत व्यापार ऊरूग्वे में विश्व व्यापार संगठन (डब्लू.टी.ओ.) की स्थापना को लेकर बातचीत की गई तो पूरा परिदृश्य बदल गया। कृषि के लेकर गैट के तत्कालीन महानिदेशक आर्थर डंकेल ने प्रस्ताव सुझाए थे। उनमें से, सभी घरेलू समर्थन जो कृषि निर्माताओं/उत्पादकों को, अपवाद स्वरूप उन्हें छोड़कर, जिन्हें समाप्त कर दिया जाए, प्रमुख था । साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रणाली को मजबूत करने के लिए प्रयास किये जाने की बातचीत की गई और विश्व व्यापार संगठन 1 जनवरी, 1995 के अस्तित्व में आ गया, जो विविध देशों का एक संघठन है। भारत इस संघठन का संस्थापक सदस्य रहा है। यह संगठन गैट का विकसित एवं विशेष रूप में सुसंघटित, अधिक व्याप्त रूप है। गैट समझौता मात्र वस्त्र उद्योग छोड़कर सभी कारखानों में उत्पन्न माल के लिए ही मर्यादित था। विश्व व्यापार संगठन में वस्त्र उद्योग सहित कारखानों में उत्पन्न माल, कृषि उत्पादन, सेवाक्षेत्र, व्यापार से संबंधी विनियोजन, उपाय योजना, बौद्धिक संपदा आदि सभी विषयों का समावेश है।

'विश्व व्यापार संगठन' का प्रमुख काम, विश्व स्तर पर व्यापार मुद्रा, उचित, निश्चित और प्रवाही, सुचारू रखने के लिए सहायता करना। इस संदर्भ में यह संगठन व्यापार समझौतों का प्रशासन करती है, व्यापार बातचीत के लिए मंच प्रदान करती है, अपने सदस्य देशों की वाणिज्य नीति की जाँच पड़ताल और निरीक्षण करती है। वाणिज्य नीति की प्रमुख समस्याओं के बारे में विकासशील देशों की तकनीकी सहायता देती है, प्रशिक्षा भी देती है। अपने इन कामों में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से सहायता लेती है। विश्व व्यापार संगठन की व्यवस्था ने कृषि क्षेत्र के व्यापार में उदारीकरण के साथ विश्व व्यापार में प्रतियोगिता एवं कुशलता के द्वारा खोल दिये हैं। इसके तहत कृषि समझौते का उद्देश्य व्यापार शुल्क तथा निर्यात अनुदान में कमी लाकर बाजार तक पहुँचाना है। नियमों के अनुसार विश्व व्यापार संगठन दो देशों के बीच किसी प्रकार के विवादों के सुलह-सफाई (डिस्प्युट सेटलमेंट अंडरस्टैंडिंग) कराने की व्यवस्था करता है और इसके साथ ही व्यापार नीति की समीक्षा की यांत्रिकता तय करता है। यह विश्व बैंक,

विश्व मुद्रा कोष की अनुरूपता को ध्यान में रखते हुए काम करता है जिससे कि वैश्विक आर्थिक नीति निर्माण में समरूपता बनी रहे। विश्व व्यापार संगठन के तहत कृषि समझौते (ए.ओ.ए.) का उद्देश्य विशेष क्षेत्र में देशों की प्रतिबद्धता की उपलब्धता है। इन समझौतों में कुछ क्षेत्रों के विशेष चुनौतियाँ के रूप से देखा जाता है।

घरेलु समर्थन

उत्पादकों की ऊंची कीमतों के एक संभव स्तर तक ले जाने के लिए शुल्क लगाने की जरूरत सबसे पहले होती है, जिनको करने के लिए सरकार के पास घरेलु एवं विदेशी नीतियों के रूप में कई उपाय होते हैं, जैसे शुल्क, निर्यात वृद्धि कार्यक्रम, मूल्यों के स्थीकरण के तरीके, आयात के लिए लाइसेंस देना एवं घरेलु मूल्यों के समर्थन देने की नीति। इसका तात्पर्य यह है कि सभी वस्तुएं जिन पर शुल्क नहीं लगाया जाए, जैसे परिमाणात्मक निर्यात प्रतिबन्ध, कम से कम निर्यात मूल्य, स्वविवेकाधीन निर्यात लाइसेंस, निर्यात पर भिन्न प्रकार की उगाहियां आदि। निर्यात अनुदान, जिन्हें प्रत्यक्ष अनुदान कहा जाता है, की जरूरत इसलिए है कि निर्यात के लिए अनुदान की व्यवस्था मूल्यों के कम करने की प्रतिबद्धता से जुड़ी है। उदाहरण के लिए पश्चिमी यूरोप के देशों, यहां घरेलु स्तर पर किसानों या उत्पादकों के निर्यात पर अनुदान देकर अधिक उपज वाले उत्पादों के विदेशी बाजार में उन मूल्यों पर बेचने के उत्साहित करते हैं जो उत्पादन के वास्तविक मूल्यों से कम होता है। घरेलु या आंतरिक कीमतों के सामान्य कृषि नीति के तहत समर्थन दिया जाता है, यदि उनकी कीमत विश्व के बाजार की कीमतों से अधिक होती है।

निर्यात अनुदान, डंकेल प्रस्तावों में मूल्यों में कमी की सूची में शामिल है, उसमें निर्यात के लिए दिए गए प्रोत्साहन मूल्य शामिल नहीं है। भारत में कृषि उत्पादों पर शुल्क बहुत ज्यादा रहा है। जैसे मुख्य उत्पादें पर शत प्रतिशत, संशेधित उत्पादों पर डेढ़ सौ प्रतिशत और खाद तेल पदार्थों पर तीन सौ प्रतिशत तक थी। हालांकि इसके लिए विश्व व्यापार संगठन व्यापार समझौतों में कुछ सुरक्षात्मक नियम भी हैं। सुरक्षा और अपवाद की दृष्टि से देखें तो उन उत्पादों के जिनमें शुल्क नहीं लगाए जाते हैं उनमें सीमा शुल्क लगाने की जरूरत नहीं है। खासकर उन देशों के लिए तो और नहीं जहां बी.ओ.पी. की समस्याएं हैं। चूंकि बी.ओ.पी. के कारण परिमाणात्मक प्रतिबन्ध लगाए रखता है इसलिए उसे उन प्रतिबन्धों से अचानक नहीं हटाया जा सकता। कुछ वस्तुओं पर से परिमाणात्मक प्रतिबन्ध हटाने की पहल की धीमी शुरूआत की जा सकती है। विश्व व्यापार में आने वाले समय में गति आ सकती है। इससे बहुत संभव है कि इन उपायों से भी कृषि के अनुदान देने के बावजूद अव्यवस्था पैदा हो जाए। भारत में उत्पादन के कम मूल्यों पर निवेश की आपूर्ति उदारहण के लिए बिजली, साख, उर्वरक परिवहन, सिंचाई, कृषि में व्यवहार किये जाने वाले ईंधन, जानवरों के चारे एवं फसल बीमा का तरीका भी एक चुनौती है।

बाजार सम्पर्क सम्बन्धी प्रतिबद्धताएं

इसके तहत वह देश जो निर्यात पर परिणात्मक प्रतिबन्ध लगाता है उसे कम से कम सीमा शुल्क की व्यवस्था करनी होगी। इस सम्बन्ध में कई धारणाएं हैं। ऐसा माना जाता है कि भारत घरेलु खपत की जरूरत के हिसाब से 3.5 प्रतिशत तक निर्यात जरूर करे। लेकिन दो कारणों से यह संभव नहीं है। पहला यह कि बाजार की पहुंच के प्रति प्रतिबद्धता उन देशों पर लागू होती है जिन देशों के परिणात्मक प्रतिबन्ध गैट के अनुकूल नहीं है। जब तक कोई भी देश भुगतान संतुलन (बी.ओ.पी.) की समस्या से परेशान है, उस पर बाजार की प्रतिबद्धता के नियम लागू नहीं होते, चूंकि भारत में भुगतान संतुलन की समस्या है। इसका परिमाणात्मक प्रतिबन्ध वैट के अनुकूल नहीं है। यदि मान लें कि भारत में भुगतान संतुलन की समस्या नहीं है तो निम्नतम बाजार के पहुँच की धारा वास्तव में प्रासंगिक हो जाएगी। लेकिन उस पर कोई दबाव नहीं होगा कि खपत के अनुसार 3.5 प्रतिशत निर्यात किया ही जाए। इस खपत के नकारात्मक सूची के बजाए मुद्रा सामान्य लाइसेंस की सूची में होना, आदि को चुनौतियाँ के रूप से देखा जाता है।

खाद्यान्नों के आयात व निर्यात का झुकाव

1990 के प्रारम्भ में कृषि निर्यात की सूची में खाद्य तेलों से ज्यादा समुद्री उत्पादन की प्रधानता रही। इसके अतिरिक्त जो दूसरे पदार्थ निर्यात किए गए उनमें चाय, काजू, बासमती, चावल, मसाले और तम्बाकू के उदारीकरण के कारण, बासमती चावल के अतिरिक्त दूसरे प्रकार के चावल का भी निर्यात किया गया। भारत अब चावल एवं अन्य खाद्य वस्तुओं के आयात पर निर्भर नहीं करता। जहां तक दूसरे खाद्यान्नों के आयात का प्रश्न है पिछले कुछ वर्षों में इसकी अनियमित पैदावार रहने के कारण स्टॉक में कमी आ गई थी। 1997-98 तक दो दालों के आयात में वृद्धि देखी गई, परन्तु बाद में दलहन की अच्छी फसल होने के कारण आयात का प्रतिशत गिर रहा है। विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के बाद आयात-निर्यात के द्वार खुलने से भारत के कृषि आधारित उद्योगों के कुछ मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है। भारत की मुश्किलें बढ़ाने के लिए खासकर व्यापारिक दृष्टि से, कुछ देशों ने अपने स्वास्थ्य मानकों के अन्तर्राष्ट्रीय मापदंड के मुकाबले काफी ऊंचा किया है। जहां अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तम्बाकू निर्यात में डी.डी.टी. की स्वीकृत मात्रा प्रति दस लाख पी.पी.एम. में चार भाग हैं, जापान और अमेरिका ने स्वीकृत स्तर से एक पी.पी.एम. कम रखा है। विश्व व्यापार संगठन में कृषि समझौते का उद्देश्य कृषि के क्षेत्र में विश्व व्यापार को उदार बनाना और सरकार के उन नियमों और बंधनों से मुक्त कराना जो व्यापार में अक्षमात बढ़ाते हैं, एक प्रमुख चुनौती है।

बौद्धिक सम्पदा के अधिकार से जुड़े व्यापार एवं सभी प्रकार के स्वास्थ्य सम्बन्धी मुद्दे भी प्रमुख चुनौतियाँ हैं।

भारत के कृषि व्यापार में समृद्धि सम्बन्धी सुझाव

1. भारत में उत्पादन से लेकर प्रसंस्करण तक की गतिविधियों पर नजर रखने की व्यवस्था ठीक नहीं है जिसकी गुणवत्ता का सीधा असर होता है। इसलिए इस देश में ऐसी व्यवस्था की जरूरत है जिसमें किसानों का निर्यात कम्पनियों तथा प्रसंस्करण केन्द्रों से सीधा सम्पर्क हो। इसके लिए संविदा कृषि अथवा सहकारी व्यवस्था की मदद ली जा सकती है। इस भीषण प्रतियोगिता में टिके रहने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मानदंडों के लागू करना बहुत आवश्यक है। प्रसंस्करण बड़ें हों या छोटे, इतने अच्छे होने चाहिए कि इससे उत्पादन की गुणवत्ता उच्चकोटि की हो जाए, इतना ही नहीं मजदूरों तथा कामगारों के स्वास्थ्य एवं सफाई का भी पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। इसके लिए निर्यात करने वाली कम्पनियों के शोध तथा विकास में भी धन का निवेश करना चाहिए।
2. फसलों को काफी समय तक सही स्थिति में रखने के लिए उत्पादन के बाद बेहतर तकनीक का इस्तेमाल आवश्यक है। इससे किसानों के फसल का अच्छा मूल्य भी मिल सकता है। भारत में एक वर्ष में अनाज का उत्पादन चीन के बाद सबसे ज्यादा है, किन्तु चीन की तरह उत्पादन पश्चात उन्नत तकनीक के अभाव में अनाज प्रसंस्करण तथा भण्डारण का पूर्णत: इंतजाम नहीं है। इस कारण भारत में किसानों को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। एक अनुमान के मुताबिक भारत के पचास हजार करोड़ का नुकसान अच्छी भंडारण व्यवस्था नहीं होने के कारण उठाना पड़ता है। भारत में अच्छे शीत भण्डारों की आवश्यकता है जिनमें कृषि उत्पादों की गुणवत्ता के बरकरार रखा जा सके। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां जो भारत में बहुत तेजी के साथ अपना व्यापार बढ़ा रही हैं, उनके पास उन्नत तकनीक है, जिससे खाद्य पदार्थ एवं कृषि उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ जाती है। भारतीय निर्यातकों को भी इस तकनीक का इस्तेमाल करना चाहिए।
3. कृषि क्षेत्र में निवेश के द्वारा जनभागीदारी बढ़ाई जाए। इसके लिए टेक्नोलोजी तथा कृषि व्यापार, विपणन एवं प्रसंस्करणों पर से अनावश्यक प्रतिबन्ध हटा लिए जाएं। ऐसा सही नीतियों तथा संस्थागत व्यवस्था से ही संभव हो सकता है। संस्थागत सुधारों के लिए स्वयं सहयोगी ग्रुप और जलग्रहण विकास समितियों को मजबूत बनाया जाना चाहिए।

4. भारत में कृषि उत्पादन के क्षेत्र में भी व्यापक वृद्धि की जरूरत है जिससे कि निर्यात योग्य उत्पाद उपलब्ध हो सकें। इसके लिए बेहतर सिंचाई व्यवस्था, बाजार का बेहतर नेटवर्क, कृषि के क्षेत्र में शोध कार्यों पर खर्च तथा आपूर्ति की प्रभावशाली कड़ियां तैयार की जाए। लोगों के लिए खाद्य सुरक्षा, किसानों की जीविका और उनके हितों की रक्षा तथा उनके उत्पादों के निर्यात के बढ़ाने पर जोर दिया जाए तथा भारतीय कृषि को बहुआयामी बनाए जाने की जरूरत है।

5. भारत के निर्यात के मद्देनजर कृषि की प्रसंस्कृत वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना अत्यन्त आवश्यक है। पिछले निर्यात रिकार्ड के ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट हे गया है कि उत्पादन तथा उत्पाद की गुणवत्ता की दृष्टि से भारत कुछ अन्य देशों की तुलना में बेहतर स्थान रखता है। फल, सब्जी तथा नकदी फसलों में यद्यपि उत्पादन की मात्रा कम है परन्तु रूपयों में इसका मूल्य अधिक है। इसलिए भारत के नकदी फसलों की उत्पादन क्षमता को बढ़ाना ही होगा तथा विकसित देशों में भारतीय कृषि उत्पादों के लिए बेहतर और बड़े बाजार की तलाश की जाए। किसानों के निर्यात की दृष्टि से फल, डेयरी उत्पाद, सब्जी, फूल जैसे वस्तुओं के उत्पादन में तेजी लानी चाहिये। निर्यात से प्राप्त धन के कृषि विकास में ही निवेश करना चाहिये जिससे कि भविष्य में निर्यात की संभावनाओं में वृद्धि की जा सके।

6. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित देशों द्वारा कृषि उत्पादों के निर्यात पर भारी अनुदान दिये जाने के कारण भारत का निर्यात बुरी तरह प्रभावित हुआ है। भारत के छोटे-छोटे किसानों के हितों की रक्षा के लिए एक सीमा तक स्तर रखना जरूरी है। इसलिए भारत जैसे विकसित देश के अपने किसानों के घरेलु समर्थन मूल्य, निर्यात अनुदान एवं मूल्यों में कमी लानी चाहिये ताकि एक निर्धारित समय के बाद भारतीय किसानों को भी आगे बढ़ने का अवसर मिले।

7. डेयरी उत्पादों के संदर्भ में भारत कई यूरोपीय तथा अमेरिकी देशों से पिछड़ा हुआ है। भारत में भी उन्नत डेयरी संयंत्र लगाए जाने की जरूरत है जिससे दूध का प्रसंस्करण अच्छे तरीके से हो सके। खुला बाजार होने की वजह से भारतीय दुग्ध उत्पाद मूल्य तथा अन्य यूरोपीय एवं अमेरिकी कम्पनियों द्वारा उत्पादित दुग्ध उत्पादों के मुकाबले में होने चाहिए।

8. जहां तक मुर्गी पालन क्षेत्र का सम्बन्ध है, खुले बाजार में घरेलु उत्पादक विकसित देशों के मुकाबले में भी भारत कहीं खड़ा नहीं होता। भारत में इस क्षेत्र में रियायतें नहीं दी जातीं जबकि विदेशों में काफी रियायतें मिलती हैं। यदि विदेशी निर्यातकों द्वारा मुर्गी के मांस का सस्ती दरों पर भेजना जाना शुरू हुआ तो देश का मुर्गी पालन व्यवसाय खतरे में पड़ सकता है।

निष्कर्ष

कृषि व्यापार की शुरूआत के एक सम्पूर्ण आर्थिक विकास में वृद्धि के रूप में देखा जाना चाहिये। कृषि के सम्बन्ध में समझौते (ए.ओ.ए.) की व्यवस्था ने भारतीय कृषि एवं इस पर आधारित उद्योगों के लिए प्रतियोगितात्मकता से धन कमाने के कई अवसर प्रदान कर दिए हैं। फिर भी विश्व व्यापार संगठन के उद्भव के बाद भारत के निर्यातकों की परेशानियां बढ़ गई हैं (संदर्भ-आर्थिक विश्लेषण एवं अनुसंधान विभाग, नाबार्ड)। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर डटे रहने के लिए जरूरी हो गया है कि भारतीय कृषि व्यवस्था में आमूलचूक परिवर्तन किया जाए। उत्पादन क्षमता बढ़ाने के अलावा भारत के निर्यात का प्रतिशत तभी बढ़ सकता है जब विकसित देशों द्वारा निर्यात में दी जाने वाले अनुदान में कटौती हो। इसलिए चुनौतियाँ बहुत बढ़ी हैं। फिर भी कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए उन्नत तथा विकसित तकनीक की जरूरत है। विश्व व्यापार संगठन के कारण उत्पन्न होती चुनौतियों का सामना करने तथा भारतीय कृषि के कुशलता के स्रोतों से विकसित एवं उन्नत तकनीक के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियेगी बनाने एवं टिकाए रखने के लिए बहुद्देशीय नीतियों के निर्माण की जरूरत है। यदि कृषि के क्षेत्र में हर स्तर पर क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की कोशिश की जाए तो वह दिन दूर नहीं, जब निर्यात के क्षेत्र में भी भारत अपना स्थान निर्धारित कर लेगा।

□□

अमरूद की उन्नतशील बागवानी

अमित कुमार गोस्वामी, ए. नागराजा एवं आनन्द कुमार सिंह
फल एव औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

अमरूद एक ऐसा फल है जिसकी तुलना अगर हम सेब से करें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अपितु यह फल उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका का होने के बावजूद, हमारे देश में ऐसे फैल गया है जैसे कि भारत ही इसका मुख्य उत्पत्ति केन्द्र हो। अमरूद भारत की पाँचवीं मुख्य फल फसल है तथा महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश कर्नाटक, गुजरात एवं उड़ीसा आदि राज्यों में इसका उत्पादन बहुतायत से हो रहा है।

फलों की व्यवसायिक खेती में अमरूद का महत्व दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है तथा हमारे देश का उत्तर भारतीय क्षेत्र अमरूद की खेती के लिए विशेष महत्व रखता है। इलाहाबाद क्षेत्र सबसे गुणवत्तायुक्त अमरूद उत्पादन के लिए विश्व विख्यात है।

पोषक तत्व: अमरूद विटामिन ''सी'' का एक बहुत ही अच्छा स्रोत है। फलों में इससे ज्यादा विटामिन-सी सिर्फ बोर्वेडेज चेरी एवं आंवला में ही पाया जाता है। बार्वेडेज चैरी को फल के रूप में उपयोग न हो पाने की वजह से इसमें उपलब्ध विटामिन ''सी'' का पूर्णत: लाभ नहीं उठाया जा सकता है। इसके अलावा पैक्टिन, अन्य विटामिन, खनिज तत्व जैसे चूना, लोहा, फास्फोरस भी इसमें उपयुक्त मात्रा में पाये जाते हैं। अमरूद में सन्तरे से 2.5 गुना ज्यादा विटामिन सी पायी जाती है। अमरूद में कई प्रकार के रसायन जैसे टैनिन्स, फिनॉल, टाईटरपी फ्लेवेनाइडस, सेपोनिन्स, केरोटिनाइडस, लेक्टिन्स आदि पाये जाते हैं। अमरूद पेट के विकार जैसे कब्ज आदि के लिए एक राम बाण की तरह है। इसके अलावा कई बीमारियों जैसे ऐनेरिक्सीय, दस्त आदि में राहत के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। लेकिन अमरूद का सबसे ज्यादा व्यवसायिक उपयोग जैली बनाने में ही किया जाता है।

जलवायु: समुद्र तल से 1500 मीटर की ऊंचाई तक के क्षेत्रों में अमरूद की सफल खेती हो सकती है। अमरूद उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु का फल है तथा हल्के पाले को सहन करने की क्षमता होती है।

मृदा एवं जल प्रबन्धन: अमरूद विभिन्न प्रकार की मृदाओं में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। इसको 4.5-8.0 पी0 एच0 मान मृदा में भी उगाया जा सकता है। यह वातावरण की विभिन्न व्याधियों में भी फूलता-फलता है। इसके सफल उत्पादन के लिए गहरी दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। अम्लीय एवं ऊसर मृदाओं में भी इसे उगाया जा सकता है परन्तु आगे चलकर उक्ठा रोग की समस्या पैदा हो सकती है। अमरूद सूखे को भी सहन कर सकता है। इसके लिए 1000 मि.मी. वर्षा प्रतिवर्ष उपयुक्त होती है। नये पौधों को गर्मियों में 2-3 दिन तथा सर्दियों में 4-5 दिन के अन्तराल पर सिंचाई कर देना चाहिये।

प्रवर्धन: अमरूद प्रसारण में कार्यिक प्रवर्धन व्यवसायिक रूप ले चुका है। भेंट कलम बन्धन अमरूद की एक बहुत सरल एवं प्रचलित विधि है। आजकल कोमल शाख कलम बन्धन विधि से व्यवसायिक स्तर पर अमरूद का प्रवर्धन किया जा रहा है। गूटी विधि का प्रयोग भी महाराष्ट्र एवं बिहार में काफी प्रचलित है।

बाग की संस्थापना: अमरूद लगाने का सबसे उत्तम समय जुलाई-अगस्त है। यदि सिंचाई की उचित व्यवस्था

हो तो इसे फरवरी-मार्च में भी लगा सकते हैं। जिन क्षेत्रों में बरसात अधिक होती है, वहाँ रोपण का कार्य बरसात के अन्त में करते हैं। बाग लगाने के पहले खेत को जोतकर समतल कर लेना चाहिये। इसके पश्चात अमरूद की बागवानी पद्धति के अनुसार उचित दूरी पर एक घन मीटर माप के गड्ढे मई-जून में बना लिये जाते हैं। तत्पश्चात इन गड्ढों में अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद 30-40 कि0ग्रा0 मिट्टी में मिलाकर भर देते हैं।

यदि अमरूद को वर्गाकार विधि से लगाना है तो 6 × 6 मीटर की दूरी उपयुक्त होती है। आजकल अमरूद की सघन बागवानी भी किसानों में काफी प्रचलित है। इसमें अमरूद को 1×2 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। परन्तु इस बात का हमेशा ध्यान रखा जाता है कि बाग में पौधे लगाने की दूरी किस्म विशेष, मृदा की उर्वरता, एवं जलवायु विशेष पर निर्भर करती है।

पोषणः अमरूद में अच्छी फलत पैदावार के लिए उपयुक्त पोषण बहुत आवश्यक है, परन्तु उर्वरक की मात्रा मृदा की उर्वरा शक्ति पर निर्भर करती है। इसलिए मृदा और पत्ती परीक्षण बहुत आवश्यक है। 7 साल या उससे अधिक के पेडों के लिए 60 कि0ग्रा0 गोबर की खाद, 360 ग्रम नत्रजन, 400 ग्रम फास्फोरस तथा 300 ग्राम पोटाश उपयुक्त पायी गयी है। अमरूद की खुराक खींचने वाली जडें तने के आस पास तथा लगभग 30 सें.मी. मिट्टी की गहराई में होती हैं। इसलिए खाद देते वक्त इस बात का ध्यान रहे कि खाद की मात्रा अधिक गहराई में न पडे। नत्रजन दो भागों में जुलाई एवं नवम्बर के महीने में तथा फास्फोरस एवं पोटाश नवम्बर-दिसम्बर में देना चाहिये।

उन्नतशील किस्मेंः अमरूद की किस्मों को फलों के आकार, रंग, पृष्ठतल एवं स्थानीय लोकप्रियता को ध्यान में रखकर वर्गीकृत किया गया है।

अमरूद की इलाहाबाद सफेदा एवं सरदार (लखनऊ-49) प्रमुख एवं सबसे ज्यादा क्षेत्र में उगायी जाने वाली किस्में हैं। इसके अलावा कुछ अन्य किस्में जैसे चित्तीदार, ऐपल कलर, बनारसी सुर्ख, हबसी, संगम, डोलका, सिंध, करेला, नासिक, हरीसा, घारवाड, सोह-पश्चिम, सहारनपुर बीज रहित, ग्वालियर-27, रीवा-72, हिसार-सफेदा, हिसार सुर्ख, बेहट कोकोनट आदि जातियां देश के विभिन्न क्षेत्रों में उगायी जाती हैं।

इसके अलावा आजकल अमरूद के लाल गूदे और लाल छिलके वाली प्रजातियाँ जैसे ललित, श्वेता की माँग बढ़ रही है। कुछ अन्य प्रजातियाँ जैसे पन्त प्रभात, अर्का मृदुला, अर्का अमूल्या, सफेद जाम एवं कोहिनूर सफेद भी काफी अच्छी प्रजातियां हैं।

काँट-छाँटः प्रारम्भिक अवस्था में कटाई-छँटाई का मुख्य उद्देश्य पौधों को आकार देना होता है। पौधे को 90-100 सें.मी. तक पहले सीधा बढने देते हैं। इस ऊंचाई के बाद 20-25 सें.मी. के अन्तर पर 3-4 शाखाऐं चुन ली जाती हैं। जब सभी शाखाऐं चुन ली गई हों तो मुख्य तने को शीर्ष से काट दें। तने के पास से अथवा भूमि के पास से निकलने वाले प्ररोहों को भी निकालते रहना चाहिए। कटाई के लिए मार्च के अन्तिम सप्ताह से अप्रैल का प्रथम सप्ताह उचित समय है।

बहार नियंत्रणः अमरूद की फसल में मुख्य रूप से दो बार फूल आते हैं। पहली बार मार्च से मई जिसकी फसल अगस्त से लेकर मध्य अक्तूबर तक मिलती है। दूसरी बार जुलाई-अगस्त में फूल लगते हैं जिसकी फसल हमें अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह से मध्य फरवरी तक मिलती है। यद्यपि वर्षा वाली फसल की उपज अधिक होती है परन्तु इस समय फलों की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है। फल मक्खी का भी प्रकोप इस मौसम के फलों पर अधिक होता है। आय की दृष्टि से भी जाड़े की फसल अधिक लाभदायी है तथा फल भी अधिक स्वादिष्ट तथा गुणवत्तायुक्त होते हैं। इनकी भंडारण क्षमता भी अधिक होती है।

अमरूद में बहार नियंत्रण के लिए कई विधियां हैं जिसमें 10 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिडकाव (अप्रैल-मई के महीने में) फूलों पर अथवा अप्रैल के प्रथम सप्ताह में,

नई पत्तियों के प्ररोहों को तीन चौथाई काटकर आदि कुछ सफल विधियों को अपनाने से वर्षा की फसल को रोककर सर्दी की उत्तम फसल की पैदावार बढा सकते हैं।

उपज: अमरूद की उपज उसकी किस्म एवं जलवायु पर निर्भर करती है। पौधे तीसरे वर्ष में ही उपज देना प्रारम्भ कर देते हैं तथा सातवें साल में सम्पूर्ण उपज मिलने लगती है। अगर अच्छे से अमरूद की खेती की जाय तो 25 टन/है0 तक उपज सम्भव है।

रोग एवं कीट नियंत्रण

उक्ठा रोग: अमरूद में लगने वाली बीमारियों में उक्ठा एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। रोकथाम के लिए मृदा उपचार से रोग के फैलाव को रोक सकते हैं। इसमें पौधा लगाने से पहले गड्ढे को फार्मलीन से उपचारित कर देना चाहिए। तत्पश्चात उस गड्ढे को तीन दिन तक बन्द करके रखना चाहिए। एस्परजिलस नाइजर (ए एन 17) को गोबर की खाद में मिलाकर इस मिश्रण को 10 कि0 ग्रा0 प्रति गड्ढे देने से भी थोड़ा प्रकोप कम होता है। जल निकास का उचित प्रबन्ध उक्ठा रोग की रोकथाम के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

एन्थ्रेक्नोज: यह रोग मुख्य रूप से उ0 प्र0, पंजाब एवं कर्नाटक में ज्यादा देखा गया है। इसके नियंत्रण के लिए बोर्डो मिश्रण (3:3:50) अथवा कापर ऑक्सीक्लोराइड 0.3% का छिडकाव 7 दिन के अन्तराल में करना चाहिए। डायथेन जैड-78 भी काफी प्रभावी है। अमरूद के अन्य रोगों में तना कैंकर, पौध अंगमारी तथा स्कैब रोग हैं, जिनका प्रकोप उतना अधिक नहीं है।

प्रमुख कीट

फल मक्खी: यह अमरूद की फसल को सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाने वाला कीट है जिसकी रोकथाम के लिए मिथाइल यूजिनॉल बोटल ट्रैप बहुत प्रभावी सिद्ध हुआ।

अमरूद की छाल भक्षी इल्ली: इसकी रोकथाम के लिए 0.05% मानोक्रोटोफॉस अथवा 0.05% क्लोरोपाइरीफॉस के घोल में रूई को भिगोकर छेद में डालकर उस पर मिट्टी का लेप कर देने से नियंत्रण पाया जा सकता है।

फल तोड़ना, भंडारण एवं उपयोग: अमरूद के पकने का समय फूल आने के समय पर निर्भर करता है। अमरूद का फल पुष्पन के लगभग 4-5 महीने में तैयार हो जाता है। जाडे की फसल को 4-5 दिन के अन्तराल पर तोडना उचित रहता है। अमरूद को यदि एक दो पत्तियों के साथ तोडें तो उसकी भंडारण क्षमता में बढत देखी गयी है। फलों को अधिक समय तक उपलब्ध कराने और अच्छे मूल्य की प्राप्ति के लिए उनका अनूकूल दशा में भंडारण किया जा सकता है। अमरूद को शीत भंडारों में 8-10 डिग्री सेंटी ग्रेड एवं 80.90% सापेक्ष आर्द्रता पर 4 सप्ताह तक भंडारण किया जा सकता है।

फलों को ताजा खाने के अतिरिक्त जैम, जैली, नेक्टर, चीज, रस एवं टॉफी आदि वस्तुऐं भी बनाई जाती हैं। यह फल पोषक तत्वों का बहुत अच्छा स्रोत होने के साथ-साथ इसकी उत्पादन तकनीकी भी बहुत सरल है एवं ज्यादा देख-रेख तथा कम लागत में किसान बहुत अच्छा उत्पादन ले सकते हैं। इस प्रकार यदि किसान वैज्ञानिक ढंग से अमरूद की खेती करें तो अन्य फसलों की तुलना में उन्हें अच्छा लाभ प्राप्त हो सकता है।

□□

उत्तर भारत में अंगूर की उन्नत उत्पादन तकनीक

संजय कुमार सिंह, महेन्द्र कुमार वर्मा, सुरेन्द्र पाल एवं लक्ष्मण सिंह
फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

अंगूर की बागवानी लगभग पूरे भारतवर्ष में सभी क्षेत्रों में की जा सकती है। फलों में अधिकतम आय देने वाला स्वादिष्ट और स्वास्थ्य हितकारी होने के कारण इसकी बागवानी की महत्ता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। पिछले 20-25 वर्षों में इसके क्षेत्रफल में काफी तेजी के साथ बढ़ोत्तरी हुई है। इस समय भारत में लगभग 80,000 हेक्टेयर से भी अधिक क्षेत्र में इसकी बागवानी की जा रही है। उत्पादन के आधार पर कर्नाटक, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु मुख्य राज्य हैं। उत्तर भारत में पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान व दिल्ली राज्यों में इसकी बागवानी की जा रही है। पिछले दशक में उत्तर भारत में अंगूर के उत्पादन क्षेत्र में गिरावट देखी गई जिसके कई कारण प्रमुख हैं, जैसे त्रुटियुक्त कांट-छांट, कुपोषण एवं सूक्ष्म तत्वों की कमी, क्षारीय भूमि का फैलाव, मूलवृंतों का न के बराबर प्रयोग, दीमक की समस्या इत्यादि। उत्तर भारत में अंगूर की फसल वर्ष में केवल एक बार जून में ली जाती है, जबकि दक्षिण भारत में दो बार ली जाती है। इसकी बेल शीघ्र बढ़ने वाली होती है तथा तीसरे वर्ष से फल देने योग्य हो जाती है। लेकिन यह तभी संभव हो सकता है, यदि पौधों की प्रारम्भिक अवस्था से ही उचित ढंग से देख रेख की गई हो। उत्तर भारत में अंगूर की सफल बागवानी के कुछ गुण नीचे सुझाए जा रहे हैं-

उपयुक्त किस्में

उत्तर भारत में उगाए जाने वाली किस्मों के चयन एवं उनके विकास व विस्तार में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने विशेष योगदान दिया है। इसमें किस्मों का विकास, सस्य तकनीकों का मानकीकरण, वृद्धि नियामकों का उपयोग, आदि भी शामिल हैं। उपोष्ण क्षेत्रों में उगाए जाने वाले किस्मों के मुख्य गुण नीचे दिए गए हैं-

ब्युटी सीडलेसः मूलतः कैलिफोर्निया (यू.एस.ए.) से आयातित किस्म जिसे आंकलन के बाद व्यवसायिक स्तर पर उगाने के लिए सिफारिश की गई। यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है। इसके गुच्छे मध्यम आकार, दाने सरस, छोटे या मध्यम आकार के होते हैं। गूदा मुलायम एवं हल्का अम्लीय होता है। इस किस्म में कुल घुलनशील शर्करा (टी.एस.एस.) 18-19 प्रतिशत है। यह किस्म मध्य जून तक पकती है। तत्काल खाने या पेय बनाने के लिए उपयुक्त किस्म है।

पर्लेटः यह भी कैलिफोर्निया से आयातित किस्म है। वर्तमान समय में उत्तर भारत में करीब 80 प्रतिशत क्षेत्रफल अकेले इस किस्म के अधीन है। यह एक बीज रहित, शीघ्र पकने वाली किस्म है। इसके गुच्छे मध्यम से लम्बे, दाने सरस, हरा, मुलायम गूदा व पतले छिलका वाला होता है। इस किस्म के फलों में कुल घुलनशील शर्करा 20-22 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह किस्म जून के दूसरे सप्ताह में पकना शुरू होती है।

पूसा सीडलेसः यह एक थॉमसन सीडलेस किस्म से चयनित किस्म (क्लोन) है। यह जून के मध्य से तीसरे सप्ताह तक पकती है। गुच्छे मध्यम, लम्बे, बेलनाकार, सुगंधयुक्त एवं गठे हुए होते हैं। फल छोटे व अण्डाकार

होते हैं तथा पकने पर पीले सुनहरे रंग के हो जाते हैं। फल खाने तथा किशमिश बनाने के योग्य होते हैं।

पूसा उर्वशी (हूर × ब्यूटी सीडलेस): यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है। जिसके गुच्छे कम गठीले एवं मध्यम आकार के होते हैं। दाने बीज रहित एवं हरापन लिए पीले रंग के होते हैं। यह ताजा खाने एवं किशमिश बनाने के लिए उत्तम किस्म है। फलों में घुलनशील ठोस तत्व करीब 20-22 प्रतिशत तक पाये जाते हैं। यह किस्म बीमारियों की प्रतिरोधी है तथा उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में जहां मानसून की पहली कुछ वर्षा की समस्या है, उगाए जाने के लिए उपयुक्त है।

पूसा नवरंग (मेडीलाइन एंजीवाइन × रूबीरेड): यह एक टेनटुरियर संकर किस्म है जिसमें गूदा, छिलका व रस गाढ़े लाल रंग के होते हैं। यह शीघ्र पकने वाली एवं काफी उपज देने वाली किस्म है। इसके गुच्छे मध्यम आकार, फल बीज रहित, गोलाकार एवं काले लाल रंग के होते हैं। यह किस्म रंगीन पेय व मदिरा बनाने के लिए उपयुक्त है। यह एन्थ्रक्नोज रोग के प्रतिरोधी तथा पूर्व मानसून के आगमन पर दाने नहीं के बराबर फटते हैं।

फ्लैट सीडलेस: यह एक कैलीफोर्निया से आयातित किस्म है। यह उत्तर भारत में उगाने के लिए उपयुक्त किस्म है। यह एक ओजस्वी, अधिक उपज वाली, लाल दाने वाली किस्म है। दाने स्वादयुक्त (22-23 प्रतिशत मिठास) एवं आकर्षक होते हैं।

प्रवर्धन

अंगूर प्रमुख रूप से कलम द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। उत्तर भारत में काट-छांट में निकली तनाओं से कलम तैयार किया जाता है। कलम स्वस्थ एवं परिपक्व टहनियों से ली जानी चाहिए। कलम करीब 1.0 से 1.5 सें.मी. मोटी एवं 25 से 30 सें.मी. लम्बा तथा 2 से 4 गांठयुक्त होनी चाहिए। इन कलमों को तैयार की गई ऊंची क्यारियों में लगा देते हैं। एक वर्ष पुरानी जड़युक्त कलमों को जनवरी के मध्य में नर्सरी से निकाल तैयार गड्ढ़ों में रोपित करते हैं।

गड्ढ़े की तैयारी

करीब 50 × 50 × 50 सें.मी. आकार का गड्ढ़ा खोदकर उसमें सड़ी गोबर की खाद (15 किलो ग्राम), 250 ग्राम नीम की खली, 50 ग्राम फॉलीडाल कीटनाशक चूर्ण, 200 ग्राम सुपर फॉस्फेट व 100 ग्राम पोटेशियम सल्फेट को मिलाकर भर दें। पौध लगाने के करीब 15 दिन पूर्व इन गड्ढ़ों में पानी भर दें ताकि वे तैयार हो जाएं। पौध लगाने के बाद तुरन्त सिंचाई करना आवश्यक है।

काट-छांट

अंगूर में काट-छांट का उत्पादन पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। उत्तर भारत में बेलों की छंटाई दिसम्बर-जनवरी में की जाती है। बेलों का ढांचा और फलोत्पादन काट-छांट पर ही निर्भर करता है। प्रथम 2-3 वर्षो तक बेलों में काट-छांट सधाई प्रणाली के अनुसार ढांचा तैयार करने हेतु की जाती है। काट-छांट से बेलों की वृद्धि एवं उत्पादन क्षमता का आधार समीप एवं नियमित बना रहता है। इसमें पुराने परिपक्व प्ररोहों (केन) को छांट दिया जाता है, तथा अधिक पुरानी शाखाओं को किनारे तक काटते हैं, जिससे उन पर नई टहनियां और नए प्ररोह विकसित हो जाएं। फलोत्पादन के लिए एक वर्ष के परिपक्व प्ररोहों को छांटते हैं, जिससे नये प्ररोह निकलते हैं और उन पर पुष्प गुच्छे विकसित होते हैं। अगले वर्ष जब नए प्ररोह पुराने हो जाते हैं, और बेलों में काफी भार हो जाता है तो उन्हें छंटाई की आवश्यकता होती है। इसलिए बेलों की प्रत्येक वर्ष काट-छांट अति-आवश्यक सस्य क्रिया है। अंगूर में फल-उत्पादन प्रत्यक्ष रूप से केन की संख्या से संबंधित होता है, लेकिन बेल की ओज क्षमता का सम्बंध इसके विपरीत है। इसलिए छंटाई के समय कितनी संख्या में केन रखे जायें और कितना फलन होने दिया जाए, यह उत्तम छंटाई, किस्म और सधाई प्रणाली पर निर्भर करता है। अंगूर में काट-छांट के मुख्यत: निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. पोषक रसों का बहाव फलोत्पादन क्षेत्र की ओर मोड़ना अथवा बदलना।

2. बेलों के आकार या ढांचे को ऐसी दशा में रखना कि उनका प्रबंध आसानी से किया जा सके।

3. बेलों से प्रत्येक वर्ष नियमित रूप से अधिक उत्पादन के साथ उत्तम गुणों वाले फल प्राप्त करना।

सधाई

अंगूर की बागवानी में बेलों की सधाई का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसके बेलों के बीच का फासला भी इसी बात पर निर्भर करता है कि उनकी सधाई किस प्रणाली से की जाए। सधाई के मुख्यत: दो महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं।

1. बेलों के ढांचे को अस्थाई रूप से सहारा देना।

2. पर्याप्त फलोत्पादन क्षेत्र उपलब्ध कराना एवं साधे रखना।

हमारे देश के विभिन्न भागों में अंगूर की कई किस्मों की सधाई के लिए भिन्न-भिन्न प्रणालियां अपनाई जाती हैं। इनमें से उत्तरी भारत में अंगूर की बेलों को साधने हेतु मुख्यत: निम्नलिखित प्रणालियां उचित मानी गई हैं-

शीर्ष प्रणाली

यह प्रणाली बहुत सरल एवं कम लागत वाली तथा कम साधन वाले बागवानों के लिए उपयुक्त है, इससे साधा गई बेलें झाड़ीनुमा होती हैं। इनका तना सीधा एवं लगभग एक मीटर ऊंचा होता है, जिसके शीर्ष पर सुवितरित 5-6 मुख्य शाखाएं विभिन्न दिशाओं में फैली रहती हैं। कम बढ़ने वाली अधिकांश अगेती किस्में जैसे 'पर्लेट', 'ब्युटी सीडलैस', 'पूसा उर्वशी', 'पूसा नवरंग' और 'डिलाइट' आदि सफलतापूर्वक इस प्रणाली पर साधी जा सकती है। बेलों को 2 × 2 मी. की दूरी पर लगाते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में मुख्य तने को बांस या बल्ली के टुकड़ों से सहारा दिया जाता है। चार-पांच वर्ष बाद तने मजबूत एवं सुदृढ़ हो जाते हैं जिन्हें सहारे की आवश्यकता नहीं रहती।

काट-छांट

प्रथम 2-3 वर्षों के अन्दर बेलों का ढांचा तैयार करते हैं। रोपाई के आरम्भ में जो 2-3 कलिकाएं फुटाव लेती हैं, उनमें से केवल एक ही स्वस्थ, मजबूत एवं सीधा प्ररोह मुख्य तने के लिए एक मीटर ऊंचाई तक बढ़ाते हैं तथा इस ऊंचाई तक अगल-बगल से निकलने वाले फुटाव अथवा पार्श्व प्ररोहों को काट देते हैं। मुख्य तने को एक मीटर ऊंचाई तक बढ़ाने के बाद काटते हैं, ताकि शीर्ष पर आवश्यकतानुसार सुवितरित 5-6 मुख्य शाखाएं विकसित हो जाएं। फल वाली बेलों में मुख्य शाखाओं पर निकले प्ररोह जब एक वर्ष पुराने एवं परिपक्व हो जाते हैं तो दिसम्बर-जनवरी में किस्मों के अनुसार में 2-3 गांठें रखकर छंटाई करनी चाहिए। इस प्रकार की फलवाली 10-15 केन अथवा स्पर प्रत्येक बेल में रखते हैं। इन्हीं केन से मार्च में नए प्ररोह निकलते हैं, जिनके ऊपर उसी समय फूलों के गुच्छे निकलते हैं। कुछ प्ररोह अत्यधिक मोटे या कमजोर होते हैं। उन्हें एक या दो कलिकाओं पर काट कर दलपुट (स्पर) बनाते हैं। इन्हीं दलपुटों के ऊपर जो प्ररोह निकलते हैं, परिपक्व होकर अगले वर्ष फल देने योग्य हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, छंटाई करते समय विशेष ध्यान रखना चाहिए कि आधे प्ररोह तत्काल फलत के लिए तथा आधे दलपुट (स्पर) बनाने के लिए प्ररोह किए जायें, ताकि फसल नियमित रूप से मिलती रहे। उत्तरी भारत में कई किसान इस विधि को सही ढंग से नहीं अपनाया तथा अपने बागों को बांछपन की तरफ मोड़ दिया।

जाफर प्रणाली

इस प्रणाली में दो तार (जी.आई. 11 गेज), जिनमें पहला तार भूमि से 75 सें.मी. की ऊंचाई पर रखकर, लोहे अथवा कंकरीट के खम्भों की मदद से क्षैतिज दिशा में फैलाते हैं। तार किनारे के दोनों खम्भों में पेच द्वारा कसे जाते हैं। इससे तारों को आवश्यकतानुसार कसा या ढीला किया जा सकता है। खम्भों की दूरी 4.8 मीटर रखते हैं। बेल 3×3 मीटर की दूरी पर लगाई जाती है। मुख्य तने को

75 सें.मी. ऊंचाई तक सीधा बढ़ाकर, पार्श्व शाखाएं विकसित करके, नीचे वाले तार पर दोनों तरफ फैलाते हैं। इसके बाद मुख्य शाखा को 75 सें.मी. तक और ऊंचा बढ़ाते हैं तथा दूसरे तार पर भी दो पार्श्व शाखाएं विकसित करके दोनों तरफ फैलाई जाती हैं। इन चारों पार्श्व शाखाओं को तार पर सुतली से ढीला बांध दिया जाता है, जो परिपक्व होने पर भुजाओं का कार्य करती हैं। इन्हीं भुजाओं पर फैलने वाली केन सुव्यवस्थित ढंग से विकसित करते हैं। यह प्रणाली कुछ मंहगी है, परन्तु यह लगभग सभी किस्मों के लिए तथा मुख्यत: अधिक ओजस्वी किस्मों जैसे 'पूसा सीडलेस', 'थाम्पसन सीडलेस' आदि के लिए उपयुक्त है।

काट-छांट

आरम्भ में बेलों को 75 सें.मी. तक सीधा बढ़ाकर पहले तार की ऊंचाई पर मुख्य तने को काटते हैं, जिससे शीर्ष पर पार्श्व प्ररोह निकलते हैं। इनमें से तीन पार्श्व प्ररोह निकलते हैं। इनमें से तीन पार्श्व प्ररोह रखकर शेष, को काट देते हैं। नीचे वाले दोनों पार्श्व प्ररोहों को पहले तार के ऊपर विपरीत दिशा में बढ़ने दिया जाता है। फिर ऊपर वाले प्ररोह को 75 सें.मी. और आगे बढ़ाते हैं तथा दूसरे तार के लिए दो शाखाएं विकसित करने हेतु बेल को भूमि से 1.5 मीटर ऊंचाई पर से काट देते हैं, जिससे तार के दोनों ओर फैलाने के लिए दो पार्श्व शाखाएं तैयार हो सकें। इस तरह से दोनों तारों पर चार पार्श्व शाखाएं तैयार हो जाती हैं, जो मुख्य भुजाओं का कार्य करती हैं। इन्हीं भुजाओं पर फलने हेतु केन, सुव्यवस्थित ढंग से छंटाई करके, दोनों तरफ वितरित की जाती हैं। फलन केन और स्पर की छंटाई तथा किस्म के अनुसार करते हैं, जैसे 'पूसा सीडलेस' या 'थॉम्पसन सीडलेस' में फल के लिए 8-9 कलिकाओं तक और 'ब्युटी सीडलेस', 'पर्लेट' एवं 'डिलाइट' में 2-3 गांठों पर 16-20 केन प्रति बेल में रखकर छांटते हैं। इसके साथ-साथ इतनी ही मात्रा में 1-2 कलिकाओं वाले दलपुट (स्पर) भी आगामी वर्ष के फलत हेतु रखते हैं।

पण्डाल या बावर प्रणाली

यह प्रणाली थोड़ी महंगी परन्तु अंगूर की सफल बागवानी और अधिक फल उत्पादन हेतु बहुत कारगर है। इसमें पण्डालनुमा ढांचा बनाया जाता है। पण्डाल 6 और 10 नम्बर वाले तारों को बुनकर जालीनुमा तैयार किया जाता है और इसे लोहे या कंकरीट के खम्भों के सहारे टिकाया जाता है। तार खड़े और पड़े दोनों तरफ से 45-60 सें.मी. की दूरी पर खींचे जाते हैं। बेलों की रोपाई 4 × 5 मीटर की दूरी पर करते हैं। मुख्य तने को लगभग 2 मीटर ऊंचाई तक बढ़ाकर जाल पर फैला देते हैं और इस प्रकार साधते हैं कि उनकी मुख्य शाखाओं से लगभग 45 सें.मी. की दूरी पर उपशाखाएं निकलकर छतरीनुमा फैल जाएं। यह प्रणाली कम ओजस्वी किस्मों के अतिरिक्त ओजस्वी किस्में, जैसे 'पूसा सीडलेस', 'थॉम्पसन सीडलेस' एवं 'अनाब-ए-शाही', आदि के लिए अधिक उपयोगी है।

काट-छांट

इस प्रणाली में सर्वप्रथम, मुख्य तने को जाल से लगभग 10 सें.मी. नीचे काटते हैं, जिससे जाल के पास वाले क्षेत्र में पार्श्व शाखाएं निकलती हैं। फिर इनमें से दो ओजस्वी शाखाएं छोड़कर शेष काट देते हैं। इन दोनों शाखाओं को तार के ऊपर विपरीत दिशा में बढ़ने दिया जाता है, जो आगे चलकर मुख्य भुजाओं का कार्य करती हैं। इसके बाद इन मुख्य शाखाओं के निकले पार्श्व प्ररोहों में से 45 सें.मी. दूरी पर तीन-तीन प्ररोह दोनों तरफ छोड़कर शेष काट देते हैं, जिनसे उप-शाखाएं विकसित हो जाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक बेल में कुल 12 उप शाखाएं या द्वितीय भुजाएं तैयार हो जाती हैं, जिनकी संख्या क्षेत्र के अनुसार बढ़ाते रहते हैं। इस तरह फल उत्पादन हेतु स्थाई ढांचा तैयार हो जाता है। फल वाली बेलों में प्रत्येक उप शाखा पर 4-5 केन व स्पर रखकर छंटाई करते हैं। इस प्रकार छंटाई के समय प्रत्येक किस्म में क्रमश: कुल 40-50 केन/स्पर प्रति बेल रखते हैं। इस विधि में 'ब्युटी सीडलेस', 'पर्लेट', 'डिलाइट' की केन

2-3 गांठों पर तथा ओजस्वी किस्मों जैसे 'पूसा सीडलेस' और 'थॉम्पसन सीडलेस' आदि को 8-9 कलिकाओं पर छांटते हैं। इसके अतिरिक्त आगामी वर्ष के फलन के लिए एक या दो कलिका वाले लगभग 35-45 दलपुट (स्पर) भी प्रत्येक बेल छोड़ना अति आवश्यक है।

खाद एवं उर्वरक

बेलों की अच्छी बढ़वार एवं मिट्टी में अधिक समय तक नमी रोकने की क्षमता बढ़ाने के लिए एक वर्ष पुरानी 15-20 किग्रा. जैविक (गोबर) खाद प्रति बेल डालनी चाहिए। यह खाद जनवरी में छंटाई के तुरन्त बाद डालकर बेलों की जड़ों के क्षेत्र तक भूमि में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए।

फल देने वाले बेलों में करीब 40-50 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद दी जानी चाहिए। उर्वरकों की मात्रायें सारणी-1 के अुनसार प्रयोग करें। उर्वरकों के मिलाने के तुरन्त बाद सिंचाई जरूर करें। सूक्ष्म तत्वों की कमी के निवारण हेतु 30 दिनों के बाद (दाने बनने के बाद) 0.1-0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव अवश्य करें।

सिंचाई

छंटाई एवं खाद डालने के तुरन्त बाद और जब पौधे फुटाव लेने लगें तो सिंचाई करना अति आवश्यक है। गर्मी के मौसम में लगातार एक सप्ताह के अन्तराल पर सिंचाई करें। जून के महीने में अधिक गर्मी पड़ने के कारण नई पौधों की सप्ताह में दो बार सिंचाई करनी चाहिए। नवम्बर से जनवरी तक बेलों की सुषुप्तावस्था के समय सिंचाई नहीं करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त बरसात के महीनों में यदि वर्षा न हो तो सिंचाई प्रत्येक सप्ताह करें।

निकाई-गुड़ाई

मुख्यत: बरसात में खरपतवार अधिक उगते हैं और तेजी से बढ़ते हैं। इसके कारण बेलों की बढ़वार रूक जाती है और पौधे कमजोर हो जाते हैं। इसके साथ-साथ बेलों में आर्द्रता बढ़ती है, जिससे बीमारियों को बढ़ावा और हानिकारक कीटों को सुरक्षा मिलती है। इसलिए बेलों में खरपतवारों को न बढ़ने दें और समय-समय पर निकाई-गुड़ाई करके निकालते रहें। खरपतवारों को कुछ रसायनों द्वारा भी नियंत्रण किया जा सकता है, जैसे डियुरिन 3 कि.ग्रा. या सिमेजीन 2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर अगस्त और फरवरी के महीने में घास उगने से पहले भूमि में डाल दें। इसके अतिरिक्त उगी हुई घास को जलाकर नष्ट करने के लिए ग्रामेक्सोन का छिड़काव सितम्बर व मार्च के महीनों में करें, परन्तु इस सावधानी के साथ कि यह बेलों की पत्तियों, शाखाओं और तने पर नहीं पड़े। बरसात के बाद बेलों की दो बार गुड़ाई कर दें। छंटाई व खाद डालने के तरुन्त बाद गुड़ाई करना अतिआवश्यक है। इसके अतिरिक्त खरपतवार होने पर एवं सिंचाई के बाद आवश्यकनुसार समय-समय पर निकाई-गुड़ाई करते रहना चाहिए।

फल की गुणवत्ता में सुधार

जनवरी के प्रथम सप्ताह में छंटाई के तुरन्त बाद बेलों पर डॉर्मेक्स या डॉरब्रेक (30 ए.आई.) का 1.5 प्रतिशत घोल का छिड़काव फूल आने व फल पकने में करीब दो सप्ताह तक अगेता हो जाता है। थायोयुरिया (2 प्रतिशत) का छिड़काव करने पर भी 10-12 दिन पहले फल पक कर तैयार हो जाते हैं। इन विनियामकों के उपयोग से फल के गुणवत्ता में भी सुधार किया जाता है।

सारणी 1: उपोष्ण कटिबंधीय अंगूर में उर्वरीकरण की अनुसूची

पोषक (ग्राम/पौध)	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई
नत्रजन	250	350	-	-
फॉस्फोरस	800	450	-	-
पोटाश	-	200	200	200

अंगूर के दानों की लम्बाई बढ़ाने के लिए जिब्रेलिक अम्ल का उपयोग किया जाता है। ब्यूटी सीडलेस किस्म में 45 पीपीएम व पर्लेट पूसा उर्वशी व पूसा सीडलेस में 25-30 पीपीएम, जीए 3 घोल का अनुकूलन प्रभाव देखा गया है। जीए 3 के घोल को प्लास्टिक के मग में लेकर, 50 प्रतिशत, फूल खिलने पर व दाने बनने के बाद दो बार उपचारण करते हैं। फल के रंग एवं मिठास में सुधार के लिए फल जब पकने से करीब एक महीने पहले इथ्रेल (1 मि. ली. प्रति 4 लीटर पानी में गुच्छों को डुबोना चाहिए।

छल्ला विधि से तना के किसी भाग पर 0.5 सें.मी. चौड़ाई की छाल उतार ली जाती है। पकने के समय छल्ला उतारने पर दानों के रंग एवं मिठास में सुधार लाया जा सकता है। इसके साथ कई किस्मों में गुच्छों की सघनता कम करके दानों के आकार में बढ़ोत्तरी की जा सकती है। फूल आने पर ब्रुश द्वारा प्रति गुच्छा फूलों की मात्रा को कम करके भी दाना आकार में सुधार लाया जा सकता है।

बीमारियां

उत्तरी भारत में अंगूर की बेलों पर बरसात के आरम्भ होते ही विशेषकर एन्थ्रेक्नोज, सफेद चूर्णिल रोग तथा सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा बीमारियों को प्रकोप होता है। एन्थ्रेक्नोज का आक्रमण बरसात व गर्मी (जून-जुलाई) के साथ-साथ आरम्भ हो जाता है तथा यह बहुत तेजी से फैलता है। इससे पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जो बीच में दबे होते हैं। धब्बे फैलकर टहनियों पर आ जाते हैं। सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा के धब्बे गोल और इनका रंग सिरों पर लाल-भूरा व बीच में तूडें जैसा होता है। एन्थ्रेक्नोज एवं सरकोस्पोरा के आक्रमण से पत्तियां सूखकर गिर जाती हैं और टहनियां भी पूरी तरह से सूख जाती हैं। कभी-कभी तो पूरी बेल ही सूख जाती है।

उपचार

एन्थ्रेक्नोज एवं सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा की बीमारियों की रोकथाम के लिए ब्लाईटाक्स या फाइटालोन का 0.3 प्रतिशत का छिड़काव अर्थात 750 ग्राम 250 लीटर पानी में प्रति एकड़ की मात्रा से एक बार जून के अन्तिम सप्ताह में करें और 15 दिनों के अन्तराल पर सितम्बर तक करते रहें।

कीट-व्याधियां

पत्ते खाने वाली चैफर बीटल अंगूर की बेलों को हानि पहुंचाने वाले कीड़ों में सबसे अधिक खतरनाक है। चैफर बीटल दिन के समय छिपी रहती है तथा रात में पत्तियां खाकर छलनी कर देती है। बालों वाली सूंडियां मुख्यत: नई बेलों की पत्तियों को ही खाती हैं। इनके साथ-साथ स्केल कीट, जो सफेद रंग का बहुत छोटा एवं पतला कीड़ा होता है, टहनियों शाखाओं तथा तने पर चिपका रहता है और रस चूसकर बेलों को बिलकुल सुखा देता है। इनके अतिरिक्त एक बहुत छोटा कीड़ा थ्रिप्स है, जोकि पत्तियों की निचली सतह पर रहता है। थ्रिप्स पत्तियों का रस चूसता है। इससे पत्तियों के किनारे मुड़ जाते हैं और वे पीली पड़कर गिर जाती हैं।

रोकथाम

उपरोक्त कीड़ों के प्रकोप से बेलों को बचाने के लिए बी.एच.सी. (10 प्रतिशत) का धूड़ा अर्थात 38 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से अथवा फोलिथियोन या मैलाथियोन या डायाजिनान का 0.05 प्रतिशत से 0.1 प्रतिशत का छिड़काव कर एक जून के अन्तिम सप्ताह में करना चाहिए। बाद में छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर जुलाई से सितम्बर तक करते रहें। इसके अतिरिक्त स्केल कीट के प्रकोप से बेलों को बचाने के लिए छंटाई करने के तुरन्त बाद 0.1 प्रतिशत वाले डायाजिनान का एक छिड़काव करना आवश्यक है।

अन्य नाशीजीव

अंगूर में पत्ती लपेटक इल्लियां काफी नुकसान पहुंचाती है। इसके नियंत्रण हेतु 2 मि.ली. मैलाथियान या डाइमेथोएट प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है। दीमकों के हमले से बचने के लिए 15-20 दिन के

अंतराल पर 5 प्रतिशत क्लोरोपाइरीफोस घोल से सिंचाई करके बेलों को बचाया जा सकता है।

एन्थ्रेक्नोज पत्तों पर भूरे या लाल दाग या फलों पर हल्के स्फेद रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। इसके नियंत्रण हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) या बाविस्टीन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। बादल छाये रहने पर 7-10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव जरूरी है।

सफेद चूर्णिल रोग शुष्क जलवायु में देखा जाता है। पत्तों एवं फलों पर सफेद चूर्णी दाग दिखाई देते हैं जो फल की सतह को खराब कर देते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 0.2 प्रतिशत घुलनशील गंधक या 0.1 प्रतिशत कैराथेन या 3 ग्राम प्रति लीटर पानी बाविस्टीन का छिड़काव दो बार 10-15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

जल निकास

अंगूर की बेलों में पानी अधिक समय तक खड़ा रहना इसकी बागवानी के लिए बहुत हानिकारक होता है। पानी के लगातार खड़ा रहने से इसकी जड़ें गल जाती हैं और बेलें सूख जाती हैं। इसलिए बरसात के फालतू पानी को बाहर निकालने के लिए जून के माह में जल-निकास नालियां तैयारी करनी चाहिए।

फलों की तुड़ाई

अंगूर में गुच्छों का पूर्णरूप से पक जाने पर ही तुड़ाई करनी चाहिए। जब दाने खाने योग्य या उनकी बाह्य सतह पर मुलायम हो जाए, तब तोड़ा जाना चाहिए। फलों की तुड़ाई प्रातः या सायंकाल में करनी चाहिए ताकि तुड़ाई के बाद उन्हें ग्रेड कर पैकिंग की जा सके। दिन में तोड़े फलों को दो घण्टे छाया में छोड़ना चाहिए।

उत्पादन

अंगूर में तीन वर्ष बाद फल मिलना शुरू हो जाता है। पर्लेट किस्म के 15 साल के बगीचे से 30-35 टन व ओजस्वी किस्म पूसा सीडलेस से 20-22 टन प्रति हेक्टेयर फलत ली जा सकती है।

उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में अंगूर के खेती में की जाने वाली वार्षिक सस्य क्रिया चक्र

जनवरी के तीसरे से चौथे सप्ताह तक

प्रत्येक बेलों में उर्वरकों की पहली खेप का डालना व मिलाना। तुरन्त सिंचाई की व्यवस्था।

अप्रैल दूसरे सप्ताह से तीसरे सप्ताह तक

उर्वरकों की अन्तिम खेप व नियमित सिंचाई। नियामकों का उपयोग।

मई के अन्तिम सप्ताह से जून के अन्तः तक

सिंचाई में नियंत्रण एवं मानसूनी बरसात से बचने के लिए फफूंदनाशक का छिड़काव (बाविस्टीन 2 प्रतिशत)।

जुलाई-अगस्त-सितम्बर

नियमित सिंचाई, रोग एवं कीट का नियंत्रण।

□□

दिल्ली के किसानों की सब्जियों द्वारा शुद्ध आय एवं लागत-लाभ विश्लेषण - एक आर्थिक अध्ययन

गीता बिसारिया, प्रमोद कुमार, कमलेश सिंह, महेन्द्र सिंह,
नरेन्द्र सिंह तोमर एवं कमल राजौरा
कृषि अर्थशास्त्र संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

यद्यपि कृषि उत्पादन एवं कृषि भूमि किसी भी अर्थव्यवस्था की अमूल्य सम्पत्ति हैं परंतु विकास के साथ-साथ किसी अर्थव्यवस्था की व्यवसायिक संरचना में कृषि क्षेत्र का योगदान, राष्ट्रीय आय या सकल/शुद्ध घरेलू उत्पाद में कम होता जा रहा है। यह विकास प्रक्रिया है, परंतु कृषि उत्पादन के महत्त्व को जानते हुए प्रत्येक सरकार सायिक संरचना पर पैनी दृष्टि रखती है। दिल्ली विकास की ओर तीव्र गति से बढ़ रही है और इसकी व्यवसायिक संरचना का अध्ययन दर्शाता है कि शुद्ध राज्य घरेलु उत्पाद में कृषि क्षेत्र का हिस्सा जो 1993-94 में 4 प्रतिशत था, से घट कर 2007-08 में मात्र 0.70 प्रतिशत रह गया। व्यवसायिक ढाँचे के आँकड़े प्राथमिक क्षेत्र में हल्की सी वृद्धि, 1999-00 में 60,000 (1.54 प्रतिशत) से बढकर 2004-05 में 83,000 (1.71 प्रतिशत) दर्शाते हैं किंतु औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र की तुलना में यह बढत बहुत ही कम है। बड़े शहरों में, विकास प्रक्रिया के परिणामस्वरूप रोजगार अवसरों में अत्यधिक वृद्धि, अल्प-विकसित एवं सीमांत प्रांतों के निवासियों को रोजगार की तलाश में अपनी ओर खींचती है और यह जनसंख्या विस्फोट को जन्म देती है। बढ़ती जनसंख्या को बसाने के लिए अधिक क्षेत्र की आवश्यकता होती है, अत: कृषि योग्य भूमि का प्रयोग आवासीय, मूलभूत एवं आधारभूत सुविधाओं की संरचना के लिए होने लगता है। परिणामस्वरूप कृषि भूमि तथा कृषि जिंसों के उत्पादन में निरंतर कमी आने लगती है। इसी कारण बड़े शहरों के आसपास के क्षेत्रों से शीध्र नष्ट हो जाने वाले पदार्थों की आपूर्ति होने लगती है जो शायद आज सहज प्रक्रिया हो गई है। इसी को आजकल परि-नगरीय कृषि की संज्ञा दी जाने लगी है।

नगरीय एवं परि-नगरीय कृषि कोई नया विचार नहीं है। प्राचीन समय से ही शहरी निवासियों की खाद्य सामग्री के प्रबन्ध में ग्रामीण कृषि का मुख्य योगदान रहा है। शहरी एवं परि-नगरीय कृषि एक दूसरे के पर्यायवाची हैं और इसकी कोई पूर्ण परिभाषा भी नहीं दी गई है। शहरी-कृषि, शहरियों द्वारा अपने छोटे-छोटे क्षेत्रों पर बाग-बगीचों में या बाल्कनियों में साग सब्जियों का उत्पादन स्व उपभोग के लिए करते हैं। परि-नगरीय कृषक, शहरवासियों की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, अपने खेतों पर विभिन्न अनाजों और साग-सब्जियों के उत्पादन को शहरों की मण्डियों में बेच कर अपना जीवन यापन करते हैं।

दिल्ली के 1483 वर्ग किलो मीटर भौगोलिक क्षेत्र पर जनसंख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। दिल्ली की जनसंख्या जो वर्ष 1901 में मात्र 4.06 लाख थी, 2001 में बढ़ कर 138.51 लाख हो गई। परिणामस्वरूप यहाँ गैर-कृषि क्षेत्र 74200 है. (1990-91) से बढ़ कर 2001 में 85190 है. और सकल कृषि क्षेत्र 76200 है. (1990-91) से कम हो कर 2000-01 में 52800 है. तथा 2007-08 में और कम 32440 है. हो गया। कृषि

क्षेत्र में कमी खाद्य पदार्थों के उत्पादन में कमी का द्योतक है। इसके अतिरिक्त जोतों का आकार एवं संचालन मंझौले और बड़े किसानों के पक्ष में पाया गया जो छोटे किसानों के हित में नहीं है। इसके साथ- साथ यहाँ मुख्य खाद्यान्नों जैसे अनाज, फल-सब्जियां, दूध तथा उससे निर्मित पदार्थों की भारी कमी भी पाई गई, जो बढ़ती आबादी के पालन के लिए अति आवश्यक है। इसी परिदृश्य में दिल्ली के किसानों द्वारा उत्पादित सब्जियों की लाभदायकता एवं शुद्ध आय जानने के लिए इस अध्ययन के माध्यम से, एक प्रयास किया है।

कार्य प्रणाली

इस शोध पत्र के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों को संकलित किया गया। विभिन्न सरकारी पत्रिकाओं में प्रकाशित, दिल्ली में कृषि भूमि, व्यावसायिक संरचना, शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद इत्यादि के द्वितीय आँकड़े एकत्रित किए गए। इसी के साथ-साथ विभिन्न उत्पादन कारकों जैसे बीज, खाद, सिंचाई, फसल तुड़ाई, पट्टे का किराया, ऋण पर ब्याज, ढुलाई, पारिवारिक सदस्यों की मजदूरी, मशीन एवं मानवीय मजदूरी इत्यादि के प्राथमिक आँकड़े वर्ष 2006-07 के लिए एकत्र किए गए। ये आँकड़े 180 चयनित किसानों से, साक्षात्कार प्रणाली द्वारा पहले से जाँची हुई सारणियों के माध्यम से लिये गये।

विभिन्न फसलों के अंतर्गत क्षेत्र आवंटन

दिल्ली के चयनित किसानों ने, दोनों मौसमों अर्थात खरीफ तथा रबी, दोनों मौसमों में अनेक अनाज तथा सब्जियों का उत्पादन किया। विभिन्न फसलों के अंतर्गत क्षेत्र आवंटन का अध्ययन दर्शाता है कि खरीफ के मौसम में सभी वर्गों के किसानों ने, अनाजों की श्रेणी में, मक्का की फसल का उत्पादन, चयनित क्षेत्र के 28 प्रतिशत क्षेत्र पर किया। सीमांत कृषकों ने चावल एवं चारा फसलों का उत्पादन नहीं किया। परन्तु इस श्रेणी के सभी किसानों ने सब्जियों के उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया। इसका कारण वे अपनी सीमित क्षेत्र से नियमित आय प्राप्त कर सकते हैं। दूसरी ओर, मध्यम एवं बड़े कृषकों ने खाद्यान्नों तथा चारा फसलों का उत्पादन किया।

खरीफ के मौसम की, अनाज की श्रेणी में, मक्का और चावल मुख्य फसलें हैं। बड़े किसानों ने इन दोनों अनाजों, सब्जियों और चारे के अंतर्गत, क्रमशः 81, 14 एवं 5 प्रतिशत भूमि का आवंटन किया। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इन किसानों ने सब्जियों का चयन करते समय मजदूरी गहनता की ओर विशेष ध्यान दिया अर्थात उन सब्जियों का चयन नहीं किया जिनमें अधिक मजदूरों की आवश्यकता हो। उदाहरणतः भिंडी एवं मिर्च, ऐसी सब्जियाँ हैं जिनकी एक दिन छोड़ कर तुडाई की जाती है, अर्थात अधिक मजदूरों की जरूरत पडती है। इससे उत्पादन लागत में वृद्धि होती है। यही कारण है कि भिंडी के अंतर्गत सीमांत किसानों ने अधिक क्षेत्र निर्धारित किया और किराये के मजदूरों के स्थान पर पारिवारिक सदस्यों का प्रयोग कर लागत में कमी करने का प्रयत्न किया। मजदूरी दर अधिक होने के बावजूद आजकल प्रत्येक क्षेत्र में मजदूरी समस्या आम हो गई है। भूमि के आवंटन में, मध्यम किसानों ने भी इस तथ्य को ध्यान में रखा अर्थात, यह समान प्रवृत्ति पाई गई।

सीमांत और लघु किसानों ने अनाज की अपेक्षा सब्जियों को अधिक महत्त्व दिया। जहाँ सीमांत किसानों ने 66 और 34 प्रतिशत भूमि पर क्रमशः सब्जियों एवं अनाज उत्पन्न किए, वहीं लघु किसानों ने सब्जियों एवं अनाज के अंतर्गत, क्रमशः लगभग 76 और 21 प्रतिशत क्षेत्र का आवंटन किया जो एक आकर्षक तथ्य है। नियमित आय प्राप्त न होना, कम भूमि पर अनाज बोने का मुख्य कारण है। जहाँ सभी वर्गों के किसानों ने खीरा, अरबी, घीया और फूल-गोभी इत्यादि के अंतर्गत भूमि आवंटित की, वहीं किसी भी सीमांत कृषक ने कोई भी चारे की फसल के अंतर्गत कुछ भी क्षेत्र आवंटित नहीं किया (तालिका-1)।

रबी मौसम में अन्न तथा सब्जियों के अंतर्गत भूमि आवंटन दर्शाता है कि गेहूँ, इस मौसम का प्रमुख अनाज, के अंतर्गत कुल चयनित क्षेत्र का 46 प्रतिशत पाया गया। मध्यम वर्ग के किसानों ने सबसे अधिक क्षेत्र, 56 प्रतिशत

तालिका 1: खरीफ के मौसम में विभिन्न फसलों के लिए क्षेत्र आवंटन, दिल्ली - 2006-07 (प्रतिशत)

फसलें	सीमान्त	लघु	मध्यम	बडे
मक्का	34.1	19.9	35.1	20.4
चावल	-	1	33.2	60.5
खीरा	22.5	24.1	9.6	4.1
अरबी	18.5	22.1	5.2	2.7
घीया	7.5	10.5	0.8	4.1
फूल गोभी	10.4	14.6	9.5	1.4
भिंडी	5.2	4.4	0.8	-
मिर्च	0.6	-	-	-
चारा	0	3.4	5.8	5.4
पालक	1.2	-	-	1.4
योग	100	100	100	100

गेहूँ के अंतर्गत आवंटित किया। इसके बाद बड़े, लघु तथा सीमांत किसानों ने, क्रमशः अपने-अपने क्षेत्र का 54, 43 तथा 24 प्रतिशत क्षेत्र आवंटित किया।

आलू, खीरा, मिर्च, इत्यादि सब्जियों के अंतर्गत 54 प्रतिशत क्षेत्र आवंटन किया गया। आलू के अंतर्गत आवंटित क्षेत्र और जोतों के आकार में विपरीत संबंध पाया गया अर्थात जैसे-जैसे जोतों का आकार बड़ता गया, क्षेत्र आवंटन का प्रतिशत कम होता गया। इस अध्ययन के दौरान पाया गया कि वर्ष 2006-07 में आलू का उत्पादन बहुत अधिक हुआ परंतु कीमतें इतनी कम थीं कि किसानों ने आलू की फसल को शीतभंडारों में रखने की अपेक्षा सडक पर फेंकना अधिक बेहतर समझा। इसका कारण था कि भंडार-गृह या दिल्ली के बाजार तक फसल लाना, किसानों को महंगा पड़ रहा था। परिणाम स्वरूप किसानों न 2007-08 में आलू के अंतर्गत कम क्षेत्र आवंटित किया जिसके परिणाम थे आलू का कम उत्पादन, दिल्ली के बाजारों में आलू की कम आवक और कीमतों में अत्यधिक वृद्धि। आलू के विषय में कहा जा सकता है कि किसानों के लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके द्वारा एक ओर इसकी माँग और दूसरी ओर किसानों को इसके अंतर्गत क्षेत्र वितरण के लिए दिशा निर्देश किया जा सके ताकि आलू के बाजार में कीमतों के उतार-चढ़ाव पर नियंत्रण रहे और किसानों को कम से कम नुकसान पहुँचे। खेद का विषय है कि, किसान इस विषय में बिना किसी जानकारी के स्वयं ही निर्णय लेते हैं।

सीमांत किसानों ने, इस मौसम में, विभिन्न सब्जियों के अंतर्गत लगभग 76 प्रतिशत भूमि निर्धारित की । दूसरी ओर मध्यम और बड़े कृषकों ने अधिक क्षेत्र पर सब्जियों का उत्पादन तो किया, मगर क्षेत्र आवंटन पर आलू के अंतर्गत अधिक क्षेत्र पाया गया। इस मौसम में भी, मध्यम और बड़े किसानों ने पालक और बैंगन जैसी सब्जियों, के अंतर्गत अधिक क्षेत्र वितरण नहीं किया क्योंकि इनमें अधिक मजदूरों की आवश्यकता होती है (तालिका-2)।

तालिका 2: रबी के मौसम में विभिन्न फसलों के लिए क्षेत्र आवंटन, दिल्ली - 2006-07 (प्रतिशत)

फसलें	सीमान्त	लघु	मध्यम	बडे
गेहूँ	24.2	43	55.8	53.7
आलू	35.6	29.1	28.8	28.7
खीरा	20.6	16.3	7.8	10.8
घीया	4.7	1.2	-	-
बैंगन	2.7	0.4	-	-
फूल गोभी	3.3	3.8	3.2	3.4
पालक	7.4	5.8	1.7	-
तोरी	-	1.3	-	
मिर्च	-	0.4	-	3.4
चारा	-	-	2.7	-
योग	100	100	100	100

खरीफ तथा रबी के मौसम की फसलों से शुद्ध आय

खरीफ के मौसम की फसलों से शुद्ध आय

इस मौसम में मक्का और चावल, अनाज वर्ग की मुख्य फसलें, सभी श्रेणी के चयनित कृषकों द्वारा उत्पादन किया गया। तालिका के अध्ययन में पाया गया कि चावल,

मक्का के मुकाबले, अधिक देने वाली फसल रही। चावल द्वारा बड़े तथा लघु किसानों को प्रति हैं आय क्रमशः 29,270 तथा 24,827 रूपये रही। यह भी देखा गया कि चावल और चारा सीमांत किसानों ने उत्पन्न ही नहीं किया। इसका कारण उनकी जोतों का छोटा आकार और नियमित आय प्राप्ति न होना हो सकता है, जो सब्जियों के उत्पादन द्वारा सम्भव था।

सब्जियों द्वारा आय प्राप्ति के अध्ययन् से ज्ञात होता है कि पालक सबसे अधिक आय (रू 1,20,585 प्रति है.) की फसल साबित हुई, किंतु इसका फायद केवल लघु किसानों ने उठाया । दूसरे नम्बर पर अधिक आय देने वाली चारा फसलें रहीं। इनसे मध्यम, लघु और बड़े किसानों को क्रमशः 49,664, 48,741 और 48,710 रूपये प्रति है. आय प्राप्त हुई। लौकी एक ऐसी सब्जी साबित हुई जिससे सबसे अधिक आय सीमांत किसानों को, रु. 47,773 प्रति है. और सबसे कम बड़े किसानों को, रु. 41,450 प्रति है. प्राप्त हुई। अरबी भी आकर्षक आय देने वाली फसल साबित हुई। इससे सीमांत बड़े किसानों को क्रमशः 42,018 और 46,226 रुपये प्रति है.

तालिका 3: दिल्ली में खरीफ की विभिन्न फसलों से शुद्ध लाभ, 2006-07 (रूपये प्रति हेक्टेयर)

फसलें	सीमान्त किसान	लघु किसान	मझौले किसान	बड़े किसान
मक्का	14751	13766	15124	14095
चावल	–	24827	26420	29270
खीरा	16968	14723	15871	14838
अरबी	42018	45615	45443	46226
लौकी	47773	42045	42694	41450
फूल गोभी	26919	27670	30424	31344
भिंडी	12061	10783	14005	–
पालक	–	120585	–	–
बैंगन	–	–	–	20797
मिर्च	9880	–	–	–
चारा	–	48741	49664	48710

आय प्राप्त हुई। भिंडी बड़े किसानों द्वारा उत्पन्न नहीं की गई। भिंडी द्वारा मंझोले किसानों की प्रति है. आय सर्वाधिक अर्थात 14005 रू. पाई गई। इसके बाद सीमांत तथा लघु किसानों ने क्रमशः 12061 और 10783 रू./है. की आय प्राप्त की। यह अंतर ध्यानाकर्षण का विषय है। इसका कारण हो सकता है कि सीमांत किसान अपने सीमित संसाधनों की सीमा को जानते हैं और पूरी मेहनत कर अधिक से अधिक आय प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। मिर्च जो अधिक आय देने वाली फसल मानी जाती है, केवल सीमांत कृषकों द्वारा ही बोई गई। मिर्च द्वारा प्राप्त आय, 9880 रूपये/ है. सबसे कम थी। इसका कारण सीमांत किसानों की जोतों का छोटा आकार है जो आदर्श उत्पादन प्राप्त करने में अक्षम पाया गया।

रबी के मौसम की फसलों से शुद्ध आय

गेहूँ, आलू एवं खीरा सभी वर्गों के किसानों द्वारा बोये गए। गेहूँ द्वारा प्राप्त शुद्ध आय प्रति है. की सीमा 13,952 (सीमांत) से ले कर 15,288 रूपये (बड़े किसानों) रही। लघु तथा मंझौले किसानों की प्राप्त आय, क्रमशः 14,648 और 14,877 रूपये प्रति है. पाई गई जिसमें अधिक अंतर नहीं था।

विभिन्न सब्जियों से प्राप्त शुद्ध आय का अध्ययन दर्शाता है कि आलू, इस मौसम में सभी वर्गों को सर्वाधिक आय देने वाली फसल सिद्ध हुई। इसकी सीमा 35,110 (सीमांत) से ले कर 38,973 रूपये (बड़े किसानों) प्रति है. रही। लघु और मंझोले किसानों की आलू द्वारा प्राप्त आय क्रमशः 38,374 और 38,057 रूपये प्रति है. पाई गई। सीमांत किसानों की आलू द्वारा प्राप्त शुद्ध आय को छोड़ कर बाकी वर्गों के किसानों की शुद्ध आय (आलू द्वारा) में कोई खास अंतर नहीं पाया गया। इसका कारण इस फसल का बहुत ही अप्रत्याशित होना है। इसके अतिरिक्त किसान क्षेत्र निर्धारण विगत वर्ष की कीमतों के आधार पर स्वयं ही करते हैं। आलू के बाद खीरा किसानों की मनपसन्द फसल रही एवं सभी वर्गों द्वारा उत्पादित की गयी। खीरा दूसरी सर्वाधिक आय देने वाली फसल भी पायी गयी, किंतु इससे प्राप्त आय में चारों वर्गों में

तालिका 4: दिल्ली में रबी की विभिन्न फसलों से शुद्ध लाभ, 2006-07 (रूपये प्रति हेक्टेयर)

फसलें	सीमान्त किसान	लघु किसान	मझौले किसान	बड़े किसान
गेहूँ	13952	14648	14877	15288
आलू	35110	38374	38057	38973
खीरा	33480	33779	33736	33914
लौकी	31438	24517	–	–
बैंगन	30010	33044	–	–
फूल गोभी	18744	17452	20594	–
पालक	23276	–	–	–
तोरी	–	–	14031	–
मिर्च	19005	20367	20646	20482
चारा	–	18940	–	19230

महत्वपूर्ण अंतर नहीं नजर आया। इसके अतिरिक्त खीरे की फसल, खरीफ एवं रबी दोनों मौसमों में, सभी वर्गों द्वारा ली गई परंतु खरीफ की तुलना में रबी के मौसम में यह प्रति है. अधिक आय देने वाली फसल पायी गयी। खीरा इस मौसम (रबी) की मुख्य फसल न होने के कारण बेमौसम की फसल मानी जाती है और दिल्लीवासी बेमौसम सब्जियों के लिए अधिक कीमत देने को तैयार थे।

पालक भी किसानों द्वारा दोनों मौसमों में लिया गया किंतु रबी में केवल सीमांत किसानों ने इसका उत्पादन कर 23,276 रू. प्रति है. आय प्राप्त की, जो अध्ययन के दौरान, रबी की तुलना में, खरीफ में अधिक पाई गई। इसका कारण भी पालक का खरीफ के मौसम में बेमौसम फसल होना है।

लौकी और बैंगन, सीमांत एवं लघु किसानों ने ही बोये और दोनों ही फसलों से, क्रमशः 31,438 (सीमांत) एवं 24,507 (लघु) रू प्रति है. और 30,010 (सीमांत) एवं 33,044 (लघु) रू प्रति है. की आकर्षक आय प्राप्त की। फूल गोभी बड़े किसानों को छोड़ कर सभी वर्गों द्वारा उत्पादित की गई । दोनों मौसमों में, फूल गोभी द्वारा प्राप्त शुद्ध आय का अध्ययन यह दर्शाता है कि खरीफ के मौसम में, कम आवक होने के कारण दिल्ली के बाजारों में अधिक कीमतों पर बिक्री और किसानों को अधिक आय दिलाने में कामयाब रही।

मिर्च, जो मसालों की श्रेणी के अंतर्गत आती है और अधिक लाभ देने वाली फसल मानी जाती है, समस्त किसानों द्वारा उत्पादित की गई। खरीफ के मुकाबले रबी के मौसम में किसानों ने, मिर्च की अधिक कीमतों के कारण, ज्यादा मुनाफा कमाया। खरीफ में सीमांत किसानों की मिर्च से प्राप्त होने वाली शुद्ध आय रबी की तुलना में एक तिहाई पाई गई। हालाँकि सीमांत किसानों को छोड़ कर बाकी सभी वर्गों के किसानों की शुद्ध आय में अधिक अंतर नहीं पाया गया मगर सीमांत किसान भी 19,005 रू. /है. के शुद्ध आय प्राप्त कर अन्य वर्गों की शुद्ध आय के आस-पास ही रहे ।

इस मौसम में चारा फसलें केवल लघु एवं बड़े किसानों द्वारा बोई गई। इस मौसम में पशुओं के लिए हरा चारा आसानी से उपलब्ध हो जाता है अतः दिल्ली के बाजार में चारे की कीमतें कम रहीं और इसका सीधा असर किसानों की शुद्ध आय पर पड़ा अर्थात खरीफ के मौसम में प्राप्त आय की अपेक्षा, चारे की फसल से रबी के मौसम में किसानों को कम आय प्राप्त हुई।

लागत-लाभ विश्लेषण

खरीफ मौसम की विभिन्न फसलों का लागत लाभ विश्लेषण

लागत-लाभ विश्लेषण प्रति 1 रू की लागत पर प्राप्त लाभ को दर्शाता है। सब्जियों के लागत-लाभ विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि, किसानों ने इस मौसम की सभी सब्जियों द्वारा लाभ कमाया। दिल्ली के चयनित किसानों द्वारा खरीफ के मौसम में उपजाई गई विभिन्न अनाज एवं सब्जियों की लागत-लाभ अनुपात का अध्ययन दर्शाता है कि इस मौसम में मक्का की अपेक्षा चावल से, प्रति 1 रू के विनियोग अर्थात लागत पर, बड़े किसानों को 1.38 रू लाभ मिला जो सबसे अधिक था।

तालिका 5: दिल्ली में विभिन्न खरीफ फसलों के लागत-लाभ अनुपात, 2006-07

फसलें	सीमान्त किसान	लघु किसान	मंझोले किसान	बड़े किसान
मक्का	1:1.04	1:1.14	1:1.21	1:1.1
चावल	–	1:1.14	1:1.28	1:1.38
खीरा	1:1.33	1:1.40	1:1.07	1:1.23
अरबी	1:2.33	1:1.84	1:2.14	1:2.02
लौकी	1:1.30	1:1.45	1:1.50	1:1.39
फूल गोभी	1:1.24	1:1.22	1:1.23	1:1.29
भिंडी	1:1.54	1:1.36	1:1.56	–
पालक	–	1:2.40	–	–
बैंगन	–	–	–	1:1.37
मिर्च	1:1.33	–	–	–
चारा	–	1:2.50	1:2.21	1:2.52

उसके बाद मंझोले एवं लघु किसानों का लाभ, क्रमश: 1.28 और 1.14 रू रहा। मक्का का लागत-लाभ अनुपात सभी वर्गों के लिए लाभ दर्शाता है किंतु मंझोले एवं सीमांत किसानों का लाभ, क्रमश: 1.21 रू और 1.04 रू पाया गया।

इन अनाजों के अलावा दिल्ली के किसानों ने कई सब्जियों जैसे खीरा, लौकी और फूल गोभी इत्यादि का उत्पादन सभी वर्गों के किसानों ने किया और यह किसानों के लिए लाभकारी भी साबित हुई। खीरे का लाभ-लागत अनुपात विश्लेषण दर्शाता है कि लागत-लाभ अनुपात 1:1.07 (मंझोले किसान) से 1:1.40 (लघु किसान) की सीमा में रहा, अर्थात एक रू की लागत पर पर 1.07 और 1.40 रू, क्रमश: मंझोले और लघु किसानों ने कीमत प्राप्त की। लौकी को उसके औषधीय गुणों के कारण इलेक्ट्रानिक मिडिया ने एक अत्यंत कारगर घरेलू दवा के रूप में घर-घर में लोकप्रिय बना दिया है, जिसका सीधा असर दिल्ली के बाजारों में लौकी की माँग पर देखा गया। हर्ष का विषय है के सभी वर्ग के किसान इस तथ्य से पूर्ण अवगत थे और उन्होंने इसका पूरा लाभ उठाया। लौकी का लागत-लाभ अनुपात सबसे कम सीमांत किसानों अर्थात 1:1.30 और सबसे अधिक मंझोले किसानों अर्थात 1:1.50 के पक्ष में पाया गया। सीमांत किसानों की कम भूमि लाभ सीमा वृद्धि में एक बड़ी बाधा है। दिल्ली में लौकी की ऊंची कीमतों के परिणाम स्वरूप प्रति 1 रू के निवेश पर सीमांत, लघु, मंझौले एवं बड़े किसानों का लाभ, क्रमश: 1.30, 1.45, 1.50 तथा 1.39 रू रहा। फूल गोभी सभी वर्गों के किसानों की मन पसन्द फसल पाई गई और यह उनके लिए लाभकारी भी साबित हुई। किंतु सभी वर्गों के लागत-लाभ अनुपात में कोई खास अंतर नहीं देखा गया। पालक और बैंगन, क्रमश: लघु एवं बड़े किसानों द्वारा उत्पन्न किए गए। पालक के लागत-लाभ अनुपात के आधार पर कहा जा सकता है कि लघु कृषकों ने प्रति 1 रू की लागत से लगभग ढाई गुना लाभ अर्थात 2.40 रू कमाया। दूसरी और बैंगन के लिए यह लाभ 1.37 रू बड़े किसानों के पक्ष में रहा।

सीमांत किसानों ने चारे की फसल नहीं ली। अरबी तथा चारे की फसल ने प्रति 1.00 रू की लागत पर दुगने से भी अधिक लाभ किसानों की झोली में डाला। अरबी द्वारा सीमांत किसानों को सर्वाधिक 2.33 रू का सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ। इसके बाद मंझोले, बड़े एवं लघु किसानों को, क्रमश: 2.14, 2.02 एवं 1.84 रू का लाभ हुआ जो काफी आकर्षक है। सीमांत किसानों ने चारे की फसलें नहीं ली मगर बाकी तीनों वर्गों के किसानों ने प्रति 1.00 रू के निवेश पर 2.52 रू (बड़े), 2.50 रू (लघु) तथा 2.21 रू (मध्यम) ने लाभ प्राप्त किया। बड़े एवं लघु किसानों द्वारा प्राप्त लाभ में कोई खास फर्क नहीं पाया गया। दिल्ली में स्थाई चारागाहों और कृषि भूमि समाप्ति की कगार पर हैं और दिल्ली का डेयरी उद्योग को अपने पशुओं के लिए चारे की कमी का सामना करना पड़ता है। इस कमी को दिल्ली के आसपास के किसानों ने समझा और लागत की अपेक्षा दुगना लाभकारी मूल्य पा कर दिल्ली के बाजारों में प्रतियोगी कीमतों पर चारा बेच कर अपनी आय में वृद्धि की।

रबी मौसम की विभिन्न फसलों का लागत-लाभ विश्लेषण

रबी के मौसम का मुख्य अनाज गेहूँ अपनी बेलोच माँग के कारण निश्चित रूप से किसानों के लिए लाभकारी होता है। गेहूँ का लागत-लाभ अनुपात, सभी वर्गों के किसानों के लिए लाभप्रद किंतु लाभ सीमा में अधिक फर्क नहीं पाया गया। यह अनुपात सीमा 1:1.28 (लघु और मझोले) से लेकर 1:1.30 (सीमांत) के बीच रही।

अनाज के बाद सब्जियों के लागत-लाभ अनुपात का अध्ययन बताता है कि पालक सर्वाधिक, लागत से दोगुना लाभ देने वाली फसल साबित हुई किंतु इसका फायदा केवल सीमांत कृषकों ने ही उठाया अर्थात 1 रू. के निवेश पर 2.73 रू का लाभ। लौकी, किसानों को दूसरे नम्बर पर सर्वाधिक शुद्ध आय देने वाली सब्जी रही। रबी के मौसम में लौकी आफ सीजन वाली फसल मानी जाती है और खरीफ की अपेक्षा इसकी माँग भी कम होती है। अत: सीमांत तथा लघु उत्पादकों का लाभ सीमित रहा जो क्रमश: 1:1.29 एवं 1:1.37 आँकलित किया गया। यह निश्चित रूप से इन उत्पादकों की व्यावसायिक कुशलता को प्रकट करता है। लागत-लाभ अनुपात तालिका बताती है कि फूल गोभी के लिए इस अनुपात की सीमा 1:1.23 (लघु किसानों) से 1:1.35 (मंझोले किसानों) के बीच रही। रबी के मौसम में दिल्ली की मण्डियों में फूल गोभी की आवक अधिक हो जाने के कारण प्रतिस्पर्धी मूल्य कम हो जाते हैं जिसका स्पष्ट प्रभाव कम लाभ सीमा में झलकता है।

आलू का वर्णन, क्षेत्र आवंटन का जिक्र करते समय किया जा चुका है। यह सभी वर्गों के किसानों द्वारा उत्पादित किया गया, किंतु आश्चर्य है कि यह अन्य सब्जियों की तुलना में सबसे कम लाभप्रद पाया गया। इसका लागत-लाभ अनुपात सर्वाधिक, 1:1.17 बड़े किसानों के पक्ष में पाया गया। इसके बाद लघु और मंझोले किसानों एवं सीमांत किसानों द्वारा, क्रमश: 1 रू की लागत पर 1.12 एवं 1.04 रू का लाभ पाया गया।

तालिका 6: दिल्ली में विभिन्न रबी फसलों के लागत-लाभ अनुपात, 2006-07

फसलें	सीमान्त किसान	लघु किसान	मझौले किसान	बड़े किसान
गेहूँ	1:1.30	1:1.28	1:1.28	1:1.29
आलू	1:1.04	1:1.12	1:1.12	1:1.17
खीरा	1:1.17	1:1.22	1:1.18	1:1.16
लौकी	1:1.29	1:1.37	–	–
बैंगन	1:1.17	1:1.23	–	–
फूल गोभी	1:1.31	1:1.23	1:1.35	–
पालक	1:2.73	–	–	–
तोरी	–	–	1:1.12	–
मिर्च	1:1.14	1:1.19	1:1.20	1:1.20
चारा	–	1.:1.98	–	1:2.03

तालिका दर्शाती है कि रबी के मौसम में चारे की फसल पालक की भाँति लगभग दुगना फायदा देने वाली रही मगर इसका लाभ केवल लघु एवं बड़े किसानों ने ही उठाया। जहाँ बड़े किसानों को प्रत्येक 1.00 रू के निवेश पर 2.03 रू का मुनाफा हुआ, लघु कृषक भी कम लाभांवित नहीं रहे। उन्होंने भी प्रति 1.00 रू के निवेश पर 1.98 रू अर्जित कर बड़े किसानों के करीब ही पाये गये। मिर्च, सभी वर्गों द्वारा उत्पन्न की गई मगर खरीफ की अपेक्षा रबी के मौसम में कम लाभप्रद पाई गई। इसके अतिरिक्त सभी वर्गों के किसानों के लागत-लाभ अनुपात में कोई खास अंतर भी नहीं पाया गया। इस अध्ययन के लिए चुने गए किसानों में से केवल मंझोले किसानों ने तोरी की फसल, रबी में वर्ष 2006-07 में पहली बार बोई और प्रति 1 रू के निवेश पर 1.12 रू का लाभ भी कमाया। यह किसानों के बेमौसम फसलों के उत्पादन की ओर रुझान को दर्शाता है।

□□

रजनीगंधा: सौंदर्य एवं सुगंध से संपन्न पुष्पीय फसल की वैज्ञानिक खेती

ऋतु जैन, नमिता, किशन स्वरूप एवं टी. जानकीराम
पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

फूल अनेक अवसरों पर मानव के व्यक्तित्व को सजाने एवं संवारने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। सौंदर्य तथा सुगंध, इन्हीं दो गुणों से सम्पन्न ऐसा ही एक पुष्पीय पौधा 'रजनी-गंधा' है। यह एमेरिलीडेसी परिवार का एक सदस्य है। इसमें पुष्प दूध के समान श्वेत एवं पुष्प डंडियों पर दोनों ओर खिलते चले जाते हैं। पुष्प डंडियां लगभग एक मीटर लम्बी होती हैं जो गुलदस्ते बनाने एवं पुष्पदानों को सजाने के काम में आती हैं। अपनी सुंदरता एवं सुगंध के कारण इसकी मांग दिल्ली जैसे महानगरों में बहुत बढ़ रही है जहां पर यह होटलों, घरों एवं कार्यालयों को सजाने हेतू प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि दिल्ली जैसे महानगरों के आस-पास के किसान इसकी खेती व्यवसायिक रूप से अपना चुके हैं और अत्यधिक धन अर्जित कर रहे हैं, जो गेहूं आदि की प्रचलित खेती द्वारा संभव नहीं है।

प्राचीन समय से ही इस पुष्प की खेती हमारे देश में होती चली आई है। उस समय सजावट के अतिरिक्त इसका दूसरा मुख्य उपयोग-पुष्पों से सुर्गंधित तेल (इत्र) निकाला जाता था जो कि अब भी प्रचलित है। इसकी मांग के मुख्य क्षेत्र हैं, दिल्ली, कोलकाता, मुम्बई, मद्रास और बंगलौर आदि स्वदेशी महानगर, जहां के पुष्प बाजार में पुष्प डंडियों एवं चुने हुए फूल दोनों की ही समान मांग है। स्वदेश में तो इसकी मांग है ही, अब अरब आदि देशों में भी इसके इत्र व पुष्पों की मांग बहुत बढ़ रही है और उच्च मूल्य प्राप्त हो रहा है। इसकी दो प्रजातियां हैं, एक डबल फूल वाली व दूसरी सिंगल फूल वाली, जिसमें इत्र की मात्रा अधिक होती है।

जलवायु

दिन का तापमान 20-30^0 से. उपयुक्त रहता है, यदि तापमान 10^0 से. से कम होता है तब इसकी पुष्प डंडियों की लम्बाई, वजन एवं पुष्पों की गुणवत्ता में कमी आ जाती है।

खेती के लिए भूमि का चयन एवं तैयारी

अन्य कन्दीय पुष्पों की तरह रजनीगंधा को भी उपजाऊ दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है। मिट्टी भुरभुरी हो और उसमें कम्पोस्ट खाद की मात्रा काफी होनी चाहिए जिससे जड़ों का विकास सुचारू रूप से हो सके। भूमि में वर्षा का पानी न रूकता हो अथवा जल निकास का अच्छा प्रबंध होना चाहिए। भूमि का पी. एच. मान 6.5 से 7.5 के बीच में होना चाहिए और सूर्य की रोशनी भी भरपूर होनी चाहिए।

कन्द लगाने से पूर्व खेत की तीन-चार बार अच्छी गहरी जुताई अवश्य करें जिससे मिट्टी बारीक हो जाए अन्तिम जुताई से पूर्व 12 से 15 टन अच्छी सड़ी गोबर की खाद एवं उर्वरक नाइट्रोजन + फास्फेट + पोटाश का 1:2:2 के अनुपात से मिश्रण बनाकर 50 से 100 किलो ग्राम प्रति एकड़ की दर से डाल कर सिंचाई कर दें जिससे खेत में अंतिम जुताई के बाद अच्छी नमी बनी रहे।

रजनीगंधा की जातियां

इस पुष्प की सिर्फ दो ही प्रजातियां पाई जाती हैं। एक डबल पुष्प वाली पर्ल जाति, जिसका प्रयोग पुष्प डंडियों

के व्यवसाय के रूप में अधिक होता है और दूसरी 'सिंगल' फूल वाली। इस जाति के फूल अधिक सुगंधित होते हैं। अत: इनका उपयोग पुष्प डंडियों के व्यवसाय के अतिरिक्त चुने हुए फूलों का उपयोग हार, गजरा एवं सुगंधित इत्र निकालने मे होता है।

इसके पौधे घास की तरह लम्बी पत्तियों वाले होते हैं जिनकी लम्बाई 25-30 सें.मी. और चौड़ाई लगभग 1 सें. मी. तक होती है। पुष्प की डंडियों की लम्बाई 60 से 100 सें.मी. तक होती है। जिस पर सफेद पुष्प जोड़े मे आते हैं और नीचे से ऊपर की ओर धीरे-धीरे खिलते चले जाते हैं। इनकी संख्या 35 से 50 के लगभग होती है जो और अधिक भी हो सकती है। यह पुष्प हफ्तों तक खिले रहते हैं।

प्रजातियां

मेक्सिकन सिंगल, मेक्सिकन डबल, सुवासिनी, वैभव श्रृंगार, प्रज्जवल, हैदराबाद सिंगल, हैदराबाद डबल, कोलकाता सिंगल/डबल, सिक्किम सिंगल/डबल, स्वर्ण रेखा एवं रजत रेखा।

प्रवर्धन

कन्दों द्वारा, जिनका व्यास 2-3 सें.मी. हो, प्रमुख कन्द से अनेकों कन्दिकायें बनती हैं जो एक वर्ष के उपरान्त प्रमुख कन्द की जगह प्रवर्धन में उपयोग लाई जा सकती हैं।

कन्द रोपण का समय

उत्तरी भारत के मैदानी इलाकों में कन्द रोपण का उचित समय फरवरी के अन्तिम सप्ताह से जुलाई तक है। देर से लगाने पर व्यवसाय के योग्य पुष्प डंडियां तो मिल जाती हैं परन्तु नवजात कन्द कम बनते हैं। अधिक कन्द प्राप्त करने के लिए इनको मार्च-अप्रैल में रोपण करना चाहिए। पहाड़ी इलाकों में कन्द रोपण का उचित समय मई से जून तक रहता है।

कन्द रोपण की विधि

कन्द लगाते समय खेत में उचित नमी का रहना आवश्यक है। कन्दों को पंक्तियों में लगाना ठीक रहता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से 40 सें.मी. एवं पंक्तियों में कन्द से कन्द का फासला 15 से 20 सें.मी. रखना ठीक रहता है। व्यवसायिक रूप से एक एकड़ रजनीगंधा लगाने हेतु लगभग 50 से 60 हजार कन्दों की आवश्यकता होती है। अच्छी पुष्प डंडियां प्राप्त करने के लिए 3 से 5 सें. मी. व्यास वाले कन्द लगाना अच्छा रहता है। प्रत्येक 3 या 4 पंक्तियों के बाद लगभग 40-50 सें. मी. जगह पंक्तियों के बीच में छोड़ देनी चाहिए, जिसका उपयोग बैठ कर खेत की गुड़ाई करने, पुष्प डंडियां काटने और फूल चुनने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त चलने फिरने से फसल का खराब होने का भय नहीं रहता है।

सिंचाई, गुड़ाई एवं देखभाल

जब कन्दों से कल्ले अंकुरित होकर दिखाई देने लगें, तब सिंचाई कर देनी चाहिए। समय-समय पर आवश्यकतानुसार खेत की गुड़ाई भी करते रहना चाहिए जिससे खेत में खतपतवार न बढ़ने पाए जो फसल के लिए बहुत हानिकारक होता है। समय-समय पर वातावरण के अनुसार सिंचाई करते रहें। अच्छी पैदावार के लिए खेत में उचित नमी बनी रहनी चाहिए।

जब कन्दों में पुष्प डंडियां निकलनी आरंभ हो जाएं तब उर्वरक की उपरोक्त बताई गई मात्रा की दूसरी खुराक खेत में डालकर गुड़ाई कर दें और फिर सिंचाई कर दें। यदि खेत में किसी बीमारी अथवा कीट का प्रकोप नजर आए तो 0.2% फफूंदीनाशक बाविस्टिन या कैप्टान और 0.2% कीटनाशक दवा-मैलाथियान, रोगोर, मेटासिस्टाक्स आदि का घोल बनाकर 20-25 दिन के अंतराल से छिड़काव करते रहें, जिससे बाजार योग्य स्वस्थ पुष्प डंडियां प्राप्त की जा सकें। इस तरह प्राप्त की गई स्वस्थ डंडियों का मूल्य भी पुष्प बाजार में अच्छा मिलता है।

पुष्प आने का समय

कन्द रोपण के लगभग 40 से 90 दिन पुष्प ड़ंडियां निकलनी शुरू हो जाती हैं। एक कंद से दो बार, पुष्प डडियां प्राप्त होती हैं, जुलाई से अक्टूबर तक एवं मार्च से मई तक। दिसम्बर-जनवरी में कंद सुषुप्तावस्था में रहते हैं।

परन्तु जिन कन्दों में अक्टूबर तक पुष्प उत्तक बन गए, वे फूल अवश्य देते हैं। लगभग पूरे वर्ष तक खेत में रखना उचित रहता है। अगर खेत उचित खाद-पानी दिया गया हो और खरपतवार न पैदा हों, तो द्वितीय वर्ष 4-5 गुना अधिक पुष्प डंडियां प्राप्त होती हैं।

पुष्प डंडियों की कटाई एवं देखभाल

पुष्प डंडियां काटने का उचित समय वह है जब नीचे के दो पुष्प खिल जाएं और डंडियों के फूलों में पूर्ण रूप से श्वेत रंग आ जाए। पुष्प डंडियों को सुबह अथवा शाम के समय तेज चाकू या कैंची से काटकर तुरंत पानी में रख देना चाहिए और लगभग 3-4 घंटे छाया में पानी के अंदर रखे रहना चाहिए जिससे डंडियां पूर्ण रूप से पानी सोख लें। उसके बाद 50 अथवा 100 डंडियों के बंडल को अखबार में स्वदेशी पुष्प बाजार में बिक्री हेतु ले जाया जाता है।

अगर रजनीगंधा के पुष्प इत्र निकालने के लिए तोड़ने हों तो यह कार्य सूर्य छिपने के बाद अथवा निकलने से पूर्व करना चाहिए। उनको अखबार लगाकर टोकरियों में रखकर जितना जल्दी हो सके, इत्र उद्योग को भेज देना चाहिए। सूर्य निकलने से पूर्व तोड़े गये पुष्पों में सुगंध एवं इत्र की मात्रा अधिक होती है और पुष्प बाजार में मूल्य भी अधिक प्राप्त होता है।

पैदावार एवं लाभ

यदि फसल की उचित देखभाल की जाए और समय पर रोपण किया जाए, उस दशा में प्रथम वर्ष हमें लगभग 1,50,000 से 2,00,000 प्रति एकड़ डंडियां मिल जाती हैं और जिनका मूल्य पुष्प बाजार में कम से कम लगभग एक से डेढ़ लाख रूपया मिल जाता है। बीज का खर्च एवं देखभाल का व्यय आदि निकाल देने पर भी प्रति एकड़ 50-60 हजार रूपया किसान भाइयों को प्रथम वर्ष मिल जाता है। द्वितीय वर्ष पुष्प डंडियों की पैदावार 4 से 5 गुना अधिक मिलती है और इस प्रकार लाभ भी प्रथम वर्ष की अपेक्षा तीन-चार गुना अधिक हो जाता है, जबकि द्वितीय वर्ष में खर्च कम होता है। यदि इत्र उद्योग एवं फूल चुनकर बेचने के लिए खेती की है तब एक एकड़ से प्रथम वर्ष में 30 से 50 क्विंटल पुष्प तथा दूसरे वर्ष 40 से 90 क्विंटल पुष्प मिल जाते हैं और इस प्रकार प्रथम वर्ष 50-60 हजार रूपया सभी खर्च आदि काटकर किसान को बच जाता है। द्वितीय वर्ष में यह लाभ कई गुना बढ़ जाता है।

कन्दों की खुदाई एवं संग्रह

कन्दों को खोदने का समय दो बार आता है। प्रथम अगर कन्दों से दूसरे वर्ष की फसल न लेनी हो तो कन्दों को शरद ऋतु के बाद जब मार्च-अप्रैल में कन्द पुष्प देना बंद कर दें और पत्तियां कुछ पीली नजर आने लगें, तो खोद लें। खोदने के बाद छायादार जगह पर अथवा ठंडी जगह पर संग्रह कर दें। कन्दों के खोदने का दूसरा उचित समय है दिसम्बर-जनवरी। इस समय कन्द निंद्रावस्था में होते हैं। उनको खोदकर छायादार अथवा ठंडी जगह पर रख दें। यदि गर्मी अधिक हो तो कन्दों को शीत भण्डार में रखना उचित रहता है।

रोग एवं कीट

रजनीगंधा पर कीड़े आदि का प्रकोप बहुत कम होता है। यह कभी-कभी चेंपा एवं कुछ अन्य कीड़े पत्तियों एवं पुष्पों को हानि पहुंचाते हैं। इनसे बचाने के लिए भी कीटनाशक दवा जैसे- रोगोर, मैलाथियान या फिर मैटासिस्टॉक्स का 0.2% का घोल बनाकर छिड़काव प्रति 10 से 25 दिन बाद करें जब तक इन पर नियंत्रण न हो जाए।

इन पुष्पों पर रोगों का भी कम प्रकोप होता है इससे बचाने के लिए 0.2% बाविस्टीन या कैप्टान का घोल बनाकर छिड़काव करना लाभदायक रहता है। कभी-कभी भण्डारण में कन्द सड़ने लगते हैं, जिसको 'स्कलेरोशिया रॉट' कहते हैं। इसको रोकने के लिए कन्दों पर 3% ब्रेसीकोल चूर्ण का छिड़काव करके कन्दों को बचाया जा सकता है।

□□

एमेरिलिस की वैज्ञानिक खेती

किशन स्वरूप, नमिता, ऋतु जैन एवं टी. जानकीराम
पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

एमेरिलिस एक अति सुंदर एवं आकर्षक कंदीय पुष्प है और ऐमेरिलिडेसी कुल का सदस्य है। इसका वानस्पतिक नाम *ऐमेरिलिस बैलेडोना* अथवा इसे हिपिस्ट्रम भी कहते हैं। इसको कुछ अन्य नामों से भी पुकारा जाता है। जैसे ट्रमपेट लिली, नाइट स्टार लिली और बारडोज लिली आदि। इसका जन्म स्थान साउथ अफ्रीका माना जाता है।

यह बहुरंगीय पुष्पों में पाया जाने वाला एक ऐसा कंदीय पुष्प है, जिसको मैदानी अथवा पहाड़ी क्षेत्रों में आसानी पूर्वक उगाया जा सकता है। इसको सुदंरता के लिए गमलों, क्यारियों, हरित गृहों एवं चट्टानी जमीन पर सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। पूष्प 'घंटे' के आकार के होते हैं, जो लम्बी डंडियों पर छतरी के रूप में 2 से 4 तक लगते हैं। फूलों में विभिन्न रंग जैसे ओरेंज, हल्का लाल, गहरा लाल, ब्राइट ओरेंज, लाल, सफेद, जामुनी अथवा मल्टीकलर के पुष्प पाये जाते हैं। यह एक अच्छा व्यवसायिक पुष्प भी है। इसके फूल काटने पर काफी समय तक पानी में ताजे व सुंदर रहते हैं। इसके कंदों की एशिया व यूरोप के देशों में काफी मांग है और कुछ किसान भाई केलिम्पोंग में इसको निर्यात भी कर रहे हैं।

इसके पौधों 30 से 80 सें.मी. ऊचे तना रहित होते हैं। पत्तियां तलवार की तरह लम्बी (30 से 50 सें.मी.) होती हैं तथा 5-10 सें.मी. चौड़ी होती हैं। फूलों का आकार घंटेनुमा होता है जिसका साइज 7 से 25 सें.मी. तक होता है और ये लम्बी (30 से 60 सें.मी.) डंडियों पर 2 से 4 की संख्या में उगते हैं। डच हाइब्रिडा के पुष्प बड़े आकार के होते हैं।

जलवायु

इसकी खेती पहाड़ी एवं मैदानी क्षेत्रों में आसानी से की जाती है।

भूमि तथा इसकी तैयारी

इसके लिए दोमट रेतीली मिट्टी की आवश्यकता होती है जिसमें कम्पोस्ट की अधिकता हो। जमीन का पी.एच. 6.0 से 7.5 के बीच में होना अच्छा रहता है। चिकनी भारी मिट्टी में कंद व जड़ों का विकास अच्छा नहीं होता। खेती की जाने वाली जमीन से वर्षा ऋतु के पानी का अच्छा जल विकास होना चाहिए।

कंद लगाने से पूर्व जमीन को अच्छी प्रकार से तैयार कर लें। खेत की गहरी जुताई (30 से 40 सें.मी.) करके धूप में खुला छोड़ दें। जिससे खरपतवार सूख जाएं और कीड़े आदि मर जाएं। अंतिम जुताई से पूर्व खेत में पानी देकर अच्छी नमी बना लें। आखिरी जुताई से पूर्व खेत में 5 से 6 किलो ग्राम अच्छी सड़ी गोबर की खाद, 50 ग्राम नीम की खली व नाइट्रोजन तथा फास्फोरस, पोटाश खाद 60:30:30 ग्राम की दर से प्रति वर्ग मीटर की दर से डाल कर खेत की जुताई करके खेत को अंतिम रूप से कंद लगाने के योग्य मुलायम बना लें।

जातियां

उत्तरी भारत में पायी जाने वाली अधिकतर जातियां हाइब्रिड किस्म की हैं जिनमें डच हाइब्रिड मुख्य है। कुछ सुंदर किस्में हैं अलंकार, एपल ब्लोसम, ग्रसीलिस, क्रिस्टियन,

जोच, स्टार आफ इण्डिया, ब्राइट रेड, ब्राइट आरेंज, पाइव स्टार जनरल, ब्लीडिंग हर्ट, रोयल कबी आदि।

कंदों की मात्रा एवं लगाने की विधि

एक एकड़ क्षेत्रफल के लिए 40 से 50 हजार कंदों की आवश्यकता होती है। मैदानी इलाकों में कंदों के लगाने का समय सितम्बर-अक्टूबर या दिसम्बर-जनवरी (अगर कंद सुषुप्तावस्था में हो), जबकि पहाड़ी इलाकों में इनका अक्टूबर-नवम्बर या मार्च-अप्रैल है। कंद से कंद की दूरी 20-25 सें.मी. व पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सें.मी. रखते हैं। कंद लगाते समय खेत में पर्याप्त नमी की मात्रा रहनी चाहिए।

कंदों को सजावट के लिए 25-30 सें.मी. के गमलों में उगाया जा सकता है। इसके लिए गमलों का मिश्रण बनाने के लिए एक भाग रेत + एक भाग पत्ती की खाद + एक भाग गोबर की खाद + एक भाग मिट्टी को लेते हैं। एक गमले में एक चम्मच हड्डी की खाद भी मिला दें। जमीन या गमले में कंद लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कंद की गर्दन अथवा ऊपरी भाग जमीन से 4-5 सें.मी. ऊपर रहे। कंद को पूर्ण रूप से जमीन या गमले की मिट्टी में न ढ़कें। कंदों को मैदानी इलाकों में फूल देने का समय है - मध्य मार्च से मध्य जून, जिस समय उद्यानों के अधिकतर पुष्प खत्म हो चुके होते हैं। नियमित देखभाल जैसे सिंचाई, गुड़ाई व खरपतवार निकालते रहने से इसकी फसल अच्छी होती है।

नये कंदों की उत्पत्ति (प्रवर्धन)

ऐमेरिलिस के नए कंदों की उत्पत्ति तीन विधियों द्वारा की जा सकती है जो निम्न प्रकार से हैं-

बीज द्वारा: पुष्प आने के बाद फूलों की सेचन क्रिया द्वारा बीज बना लें। इसमें बीज बहुत हल्के होते हैं, पक जाने पर उनको इकट्ठा करके तुरंत गमलों अथवा उथली पौधशाला की क्यारियों में बुवाई कर देना चाहिए। प्रत्येक बीज से एक छोटा अंकुरित पौधा निकलता है। 5-6 महीने तक इन नन्हें पौधों को उसी गमले अथवा क्यारी में रखें और जब वे 2-3 पत्तियों वाले हो जाएं तो उनको फरवरी -मार्च अथवा जुलाई-अगस्त में अलग-अलग करके क्यारियों में 5-6 किलो ग्राम गोबर की खाद प्रति वर्ग मीटर में मिलाकर लगा दें। इस तरह प्राप्त कंद 3-4 वर्ष में फूल देने लगते हैं।

कंदों से निकलने वाले नव-कंदों द्वारा: ऐमेरिलिस के कंद स्वत: बहुत कम नवीन कंदों की उत्पत्ति करते हैं। साल में एक-दो नवजात कंद की ही उत्पत्ति होती है। पूसा की एक किस्म 'सूर्य किरण' नवजात कंद उत्पत्ति के लिए सबसे अच्छी है और इसके एक विकसित कंद से 3-4 और अधिक नवजात कंद मिल जाते हैं, जिनको अलग-अलग करके लगाने से दो वर्ष में कंद पुष्प देने योग्य बन जाते हैं।

स्केलिंग विधि द्वारा: इस विधि द्वारा कंदों की उत्पत्ति तेजी से की जा सकती है और एक पूर्ण विकसित बड़े कंद से लगभग 50-60 नवजात कंद प्राप्त हो सकते हैं। इस विधि के लिए पूर्ण विकसित बड़ा कंद लेते हैं और रूट प्लेट से जड़ों को सावधानी पूर्वक साफ कर लिया जाता है। गर्दन से पत्तियों को भी साफ कर दिया जाता है। फिर तेज चाकू द्वारा लम्बाई में कंद पहले दो भाग में काट दिया जाता है। प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई में दो-दो बार काटते हैं और अंत में 16 टुकड़े मिल जाते हैं। प्रत्येक टुकड़े का एक जोड़ा स्केल व कट प्लेट के साथ अन्य 3-4 भागों में काट लें। ध्यान रहे कि स्केल सूखने न पाएं। फिर इनको 0.2% बेनोमिल या 0.3% कैप्टान से कुछ मिनट उपचार करने के बाद रेत से भरे गमलों में लगा दें और हल्का पानी देते रहें जिससे नमी बनी रहे। गमलों के रेत का तापमान 25^0 से 28^0 सेल्सियस के बीच दो-तीने महीने तक रखना आवश्यक है। प्रत्येक टुकड़े की रूट प्लेट पर कुछ समय बाद एक नन्हा नवजात कंद अंकुरित हो जाएगा। दो पत्तियां आने तक उसे वहीं बढ़ने दें फिर फरवरी अथवा वर्षा ऋतु में निकालकर लगा दें। इस प्रकार एक कंद से 50-60 तक कंद प्राप्त हो सकते हैं।

पुष्प काटने की विधि

जब फूलों को व्यवसाय अथवा सजाने के लिए काटना हो, उस समय कुछ ध्यान रखने योग्य बातें होती हैं जैसे फूलों को उस समय काटें जब पुष्प कलियों में पूर्ण रंग आ गया हो और पंखुड़ी कुछ-कुछ खिलने लगे। पुष्प डंडी को तेज चाकू द्वारा पूर्ण नीचे से काटना चाहिए, जहां पर डंडी मजबूत हो और उसका पानी बाहर न आए। फूलों को काटने के तुरंत बाद पानी में रखकर छाया या शीत घर में रख दें। एक-दो घंटे यहां पर रखने के बाद आवश्यकतानुसार उन का प्रयोग कर लें।

कंदों का संग्रह

आमतौर से ऐमेरिलिस ऐसे स्थान पर लगाएं, जहां वह दो-तीन वर्ष तक उगता रहे। अगर कंदों की खुदाई करनी हो, उस हालत में यह क्रिया वर्षा ऋतु खत्म होने के बाद नवम्बर-दिसम्बर में कंदों की खुदाई कर लें। इस समय कंद सुषुप्तावस्था में आ जाते हैं। अगर शीतगृह उपलब्ध न हो, तो इन्हें खोदने के बाद ठंडी जगह में रखें। शीतगृह में रखना हो तो कंदों को $14-17^0$ सेल्सियस तापमान पर रखें। मैदानी इलाकों में 30^0 सेल्सियस पर भी छाया एवं ठंडी जगह पर कंदों का संग्रह कर सकते हैं।

कीट एवं बीमारियां

कंदों को नुकसान पहुंचाने वाले मुख्य कीट निम्न प्रकार के हैं-

माइट: यह कंद को नुकसान पहुंचाता है, जिसकी वजह से पुष्प डंडियां छोटी हो जाती हैं। इसको थायोडान-5 के द्वारा उपचार किया जा सकता है।

रेड स्पाइडर माइट: ये पत्तियों को नुकसान पहुंचाते हैं। इसके लिए पेनटाक-30 ग्राम/प्रति 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना लाभदायक होता है। अन्य हानिकारक कीड़ों जैसे-एफिड, मिली बग एवं स्केल कीट आदि का 0.2% मैलाथियान अथवा रोगोर आदि से छिड़काव करके उपचार किया जा सकता है।

कंदों की हानिकारक बीमारियां

फ्युजेरियम: यह बीमारी जड़ों को नुकसान पंहुचाती है। इसको सिस्टेमिक कवकनाशी जैसे बाविस्टीन 0.2% द्वारा उपचार करते हैं।

रेड लीफ स्पोट: यह पत्तियों को नुकसान पहुंचाती है, जिसको 0.2% बेनलेट का छिड़काव द्वारा उपचारित किया जा सकता है।

वाइरस: यह भी पौधों पर प्रकोप करता है। रोग ग्रस्त पौधों को निकालकर जला दें। अथवा खेत से दूर जमीन में दबा दें।

□□

धान की खेती में जैव नियंत्रण-एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन

संजय सिंह
बीज उत्पादन इकाई, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

फलत: सघन एवं एकल कृषि तथा रसायनों के अविवेक पूर्ण एवं अत्यधिक प्रयोग से जहां एक ओर जैव विविधता का ह्रास हुआ है वहीं रोग जनकों तथा कीटों में रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हुई है। यही कारण है कि निरन्तर रसायनिक दवाओं के प्रयोग के बावजूद कीट व्याधियों की समस्यायें निरन्तर बढ़ती जा रही हैं।

कृषकों को इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुये एक लागत विहिन एवं अत्यधिक प्रभावशाली, पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल एवं सर्वत्र प्रभावी तकनीक न्यूनतम साझा कार्यक्रम का विकास किया गया है। जो कि समेकित नाशीजीव प्रबन्धन का एक अंग है। इस पद्वति के चार प्रमुख अवयव हैं, 1. मृदा सौर्यकरण, 2. वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन एवं प्रयोग, 3. जैव अभिकर्ता का अधिक से अधिक प्रयोग, तथा 4. वर्मीकम्पोस्ट की गुणवत्ता में वृद्धि।

जैव अभिकर्ता का अधिक से अधिक प्रयोग

किसी जीव द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं के कारण दूसरे जीव (रोगजनक) का आंशिक या पूर्ण रुप से विनाश किया जाता है। रोगजनकों का विनाश करने वाले जीवों को जैव अभिकर्ता कहते हैं। चूँकि रासायनिक दवाओं के लगातार प्रयोग से रोगजनकों में प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण रोगों को रासायनिक दवाओं से नियंत्रित कर पाना कठिन हो जाता है। इसके लिए जैव अभिकर्ता द्वारा रोगों का नियंत्रण एक उपयुक्त विकल्प है। क्योकि ये पूर्ण रुप से जैविक प्रक्रिया है इसलिए जैव नियंत्रण से फसलों की सुरक्षा के साथ-साथ मिट्टी की गुणवत्ता एवं पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। पिछले दो दशकों में बहुत से जैव अभिकर्ता व्यवसायिक स्तर पर बाजार में उपलब्ध हैं जिनमें रोग नियंत्रण के लिए ट्राईकोडर्मा एवं स्युडोमोनास जैव अभिकर्ता अधिक प्रचलित है। जैव अभिकर्ता ट्राइकोडर्मा हरजियेनम व स्युडोमोनास फ्लोरीसेन्स का व्यापक स्तर पर उत्पादन किया जाता है।

बीज उपचार: बड़े बीज जैसे- मटर, सोयाबीन, गेहूँ व बीन के लिए 6-8 ग्राम /किलो ग्राम बीज तथा छोटे बीजों जैसे- गोभी, मिर्च, टमाटर, बैंगन इत्यादि के 4-6 ग्राम/किलो ग्राम बीज की दर से बीजों को उपचारित किया जाता है। यदि बीज पहले से रासायनिक दवाओं द्वारा उपचारित हो तो उसे पानी से धोकर जैव अभिकर्ता द्वारा उपचारित करना चाहिये। जैव अभिकर्ता द्वारा बीज उपचार के लिए बीज के ऊपर थोडा सा पानी छिड़क कर संस्तुत दर के आधार पर जैव अभिकर्ता पाउडर ठीक से मिला देते हैं। इसके बाद बीज को थोड़ी देर छाया में रख देते हैं जिससे जैव अभिकर्ता की परत बीज के ऊपर लग जाये। तत्पश्चात बीज की बुवाई कर देते हैं।

कंद प्रकंद उपचार: अदरक, अरबी, आलू आदि के उपचार के लिए 8-10 ग्राम जैव अभिकर्ता /लीटर पानी में घोलकर कंदों को लगभग 30 मिनट तक डुबो कर निकाल देते हैं और उन्हें छाया में सुखाने के बाद बुवाई कर देते हैं।

पौध उपचार: रोपाई से पहले पौध की जड़ों को जैव नियंत्रक के घोल से उपचारित करते हैं। इसके लिए पौध को पौधशाला से उखाड़कर उसकी जड़ को पानी से अच्छी तरह पानी से साफ करने के बाद 8-10 ग्राम/लीटर जैव अभिकर्ता का पानी में घोल बनाकर उसमें आधा घंटे तक जड़ें डुबोने के पश्चात् पौधों की रोपाई करते हैं। पौध उपचार मुख्यत: सब्जियों जैसे- गोभी, मिर्च, टमाटर आदि में करते हैं।

छिड़काव: बीज एवं मृदा जनित रोगों की रोकथाम के अतिरिक्त जैव अभिकर्ता द्वारा हवा द्वारा फैलाई जाने वाले बीमारियों को भी रोका जा सकता है। इसके लिए 8-10 ग्राम/लीटर जैव अभिकर्ता पानी में मिलाकर घोल का छिड़काव समय-समय पर फसल में किया जाना चाहिये।

जैव अभिकर्ता के प्रयोग से जहाँ एक ओर उत्पादन लागत कम की जा सकती है वहीं मानव स्वास्थ्य एंव पर्यावरण पर दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। रोग कारक जीवों में जैव अभिकर्ता के प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने की सम्भावना भी नहीं रहती है तथा जैव अभिकर्ता का बीज के अंकुरण एवं पौधे की वृद्वि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। जैव अभिकर्ता के प्रयोग में कुछ सावधानियां बरती जानी अत्यन्त आवश्यक हैं जैसे-

1. जैव अभिकर्ता को निर्धारित समय सीमा के अंदर ही प्रयोग में लाना चाहिये। मुख्यत: जैव अभिकर्ता उत्पादन के दिन से 6 महीने के अंदर प्रयोग में लाये जा सकते हैं।
2. जैव अभिकर्ता के प्रयोग के समय मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी एवं कार्बनिक पदार्थ होना चाहिये। रासायनिक दवाओं के साथ जैव अभिकर्ता का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये।
3. जैव अभिकर्ता का भण्डारण 25°से. से कम तापमान पर ही करना चाहिये।

मृदा सौर्यकरण

पौधशाला में अधिकांशत: विभिन्न कवकीय व जीवाणुवीय रोगजनक, कीटों व खरपतवार की बहुतायत रहती है जिससे बीज सड़न, जड़ व तना सड़न के कारण पौधशाला में ही पौधों की संख्या कम हो जाती है। जो पौध बचती है वह अस्वस्थ व संक्रमित होती है जिससे कीट व्याधियों का प्रसार खेतों तक हो जाता है। पौधशाला में रोगजनकों, कीटों व खरपतवार के प्रभाव को कम करने के लिए एक प्रभावशाली एवं लागतविहिन तकनीक है मृदा सौर्यकरण । इसमें पौधशाला बीज बुवाई 5-8 सप्ताह पूर्व तैयार की जाती है एवं इसको पानी से पूरी तरह नम कर देते हैं। इसके पश्चात् पौधशाला को पारदर्शी पॉलीथीन की चादर से ढक देते हैं तथा पौधशाला के चारों ओर से पॉलीथीन की चादर को इस प्रकार दबा देते हैं कि वायु का संचार न हो सकें। इस पॉलीथीन की चादर को बीज बुवाई से 3-4 दिन पूर्व ही हटाते हैं।

पॉलीथीन की चादर हरित गृह प्रभाव पैदा करती है जिससे सौर उर्जा पारदर्शी पॉलीथीन की चादर के अंदर तो आ सकती है लेकिन बाहर नहीं जा सकती। इससे पौधशाला में मिट्टी का तापमान बढ़ जाता है जो कई रोगजनक सक्षम जीवों व कीटों के लिए घातक हो जाता है। मृदा सौर्यकरण के प्रभावशाली परिणाम प्राप्त करने कि लिए ये आवश्यक है कि सौर्यकरण पारदर्शी पॉलीथीन का ही प्रयोग कर वर्ष की सबसे गर्म अवधि के दौरान 5-8 सप्ताह तक किया गया हो, पॉलीथीन बिछाने से पूर्व पौधशाला की सिंचाई व मृदा में कार्बनिक पदार्थ मिला हो तथा पॉलीथीन का आवरण ठीक प्रकार लगाया गया हो।

कम्पोस्ट खाद की गुणवत्ता में वृद्वि

किसानों के स्तर पर *ट्राइकोडर्मा* के अधिक मात्रा में उत्पादन के लिए एक नयी पद्धति विकसित की गयी है। इसके लिए सबसे पहले लगभग 2 मी. चौड़े एवं 1.5 मी. गहरे गड्ढे बनाते हैं। फिर इन गड्ढों में गोबर डालते हैं। गोबर पर 500 ग्राम *ट्राइकोडर्मा* पाउडर प्रति गड्ढे के हिसाब से बुरकाव करके फावड़े से मिलाकर गड्ढों को बोरे या धान की पुआल से ढक देते हैं। समय-समय पर पानी का छिड़काव करते रहते हैं। जिससे उचित नमी बनी रहे। 7-10 दिन के बाद नया गोबर मिलाकर फावड़े से अच्छी तरह मिला देते हैं और फिर बोरे या पुआल से ढक कर बराबर पानी का छिड़काव करते रहते हैं। इस प्रकार लगभग 30- 35 दिन में *ट्राइकोडर्मा* से उपनिवेषित गोबर की बहुत अच्छी सड़ी खाद तैयार हो जाती है। नये गड्ढे तैयार करने के लिए गड्ढों में गोबर की खाद डालने के बाद पहले से तैयार *ट्राइकोडर्मा* निवेषित खाद की कुछ मात्रा मिला देते हैं और पुआल से अच्छी तरह ढककर

पानी का छिड़काव करते रहते हैं। इस प्रकार एक बार तैयार की गयी खाद आगे भी बार-बार उपयोग में लायी जा सकती है। इस विधि से तैयार गोबर की खाद बहुत अच्छी गुणवत्ता की होती है तथा 1 ग्राम खाद में *ट्राइकोडर्मा* की मात्रा 10^9 सी एफ यू तक हो सकती है। इस खाद का उपयोग मृदा उपचारण के लिए करते हैं। खाद में उपस्थित जैव नियन्त्रक विभिन्न प्रकार के रोगकारक जैसे *राइजोक्टोनिया, फ्युजेरियम, पिथियम, फाइटोफ्थोरा, स्केलेरोटीनिया, स्केलेरोशियम, मैक्रोफेमिना* इत्यादि की रोकथाम में सहायक होते हैं जो फसलों में कई प्रकार की बीजोढ़ एवं मृदोढ़ बीमारियों जैसे जड़ गलन, आर्द्र गलन, उक्ठा रोग, बीज सड़न, अंगमारी आदि के लिए जिम्मेदार होते हैं। इस प्रकार *ट्राइकोडर्मा* उपनिवेषित गोबर की खाद के प्रयोग से फसल स्वस्थ और सुरक्षित रहती है।

वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन एवं प्रयोग

गोबर, सूखे व हरे पत्ते, घास-फूँस, धान का पुआल, खेतों के अवशेष इत्यादि को खाकर केंचुए लगभग 3 माह में वर्मी खाद तैयार कर देते हैं। *एसीनिया फोटिडा* प्रजाति के केंचुए शीघ्र एवं अच्छी खाद बनाते हैं। यह खाद सब्जियों, फल वृक्षों, फसलों के लिए पूर्णरुप से प्राकृतिक, लगभग सम्पूर्ण आहार प्रदान करती है। जहां वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग कर उत्पादन लागत को कम किया जा सकता है वहीं इसके प्रयोग करने से पौधों में प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है एवं भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ने के साथ-साथ मृदा की जल धारण क्षमता भी बढ़ जाती है। खाया गया कार्बनिक पदार्थ केंचुओं के आहार नाल से होकर निकलता है जहां उस पर विभिन्न एन्जाइम फसलों के लिए अत्यन्त लाभदायक होते हैं। वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने के लिए घर व खेतों का कूड़ा, खरपतवार व गोबर को एकत्रित कर 6 फीट लम्बे, 2.5 फीट चौड़े व 1.5 फीट ऊँचे गडढे में डाल देते हैं। यह गड्ढा कच्चा या पक्का हो सकता है। गड़ढे का आकार उपलब्ध स्थान एवं सुविधानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है। तत्पश्चात गडढे में उचित प्रजाति के केचुए डाल देते हैं। ये केंचुए प्रजनन कर अपनी संख्या में वृद्वि करते हैं तथा गड्ढे में डाले गये पदार्थ को खाकर मिट्टी के रुप में मल का त्यागकर वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन करते हैं। इसके उत्पादन के लिए कुछ सावधानियां बरती जानी अत्यन्त आवश्यक हैं-

1. गडढे को सूर्य के प्रकाश से बचाना चाहिये। इसलिए उसे पेड़ की छाया में बनाना चाहिये अथवा गडढ़े के ऊपर घास का छप्पर बनाना चाहिये।
2. क्यारी (बेड) में नमी व हवा का आवागमन सुचारु रुप से होते रहना चाहिये।
3. ताजा या अधिक पुराना गोबर वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए प्रयोग नहीं करना चाहिये।
4. गड्ढे के ऊपर ढकने के लिए पॉलीथीन का प्रयोग नहीं करना चाहिये।
5. गडढे की मेंढक, छिपकली, चिड़ियों, दीमक व चिटियों से सुरक्षा करनी चाहिये।
6. नमी बनाये रखने के लिए गडढे के कार्बनिक पदार्थ पर सप्ताह में एक बार पानी का छिड़काव तथा दो सप्ताह में एक बार पलटाई करनी चाहिये।
7. गडढे में पानी नहीं भरने देना चाहिये।

वर्मी कम्पोस्ट की गुणवत्ता में वृद्वि

केचुओं द्वारा तैयार वर्मी कम्पोस्ट को गडढे से निकालने के पश्चात् उसमें 250 ग्राम/कुन्तल की दर से जैव अभिकर्ता को मिला दिया जाता है इससे एक ओर जहाँ वर्मी कम्पोस्ट की उर्वराशक्ति में वृद्वि होती है, वहीं जैव अभिकर्ता को कार्बनिक पदार्थ मिल जाने के कारण वह इसमें तेजी से फैल जाता है और कम जैव अभिकर्ता का प्रयोग कर उसे अधिक क्षेत्रफल में प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त बताये गये न्युनतम साझा कार्यक्रम के द्वारा मृदा एवं बीज जनित रोग एवं कीटों को नियन्त्रित किया जा सकता है। उद्देश्य है, स्वस्थ्य पौध तैयार करना जिसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मृदा की जैव विविधता को निरन्तर बनाये रखा जाये। लाभदायक सूक्ष्म जीवों का संरक्षण एवं उनके संवर्धन के लिए मृदा में अधिक से अधिक कार्बनिक पदार्थ उपलब्ध कराया जायें। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति न्युनतम साझा कार्यक्रम को अपनाकर पूरी की जा सकती है। इसे अपनाने से कृषकों की उत्पादन लागत कम होगी, कीट बीमारियों का प्रकोप कम होगा, कृषक का लाभ लागत अनुपात बढ़ेगा एवं कृषक न्युनतम लागत में गुणवत्ता युक्त उत्पाद पैदा कर सकेगा।

धान के लिए एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन प्रणाली पर आधारित मॉडयुल

मॉडयुल 1: जैविक धान की खेती हेतु

मुख्य समस्यायें- भूरा धब्बा, झोंका, पर्ण छन्द विगलन, पर्ण छन्द अंगमारी, झुलसा, तना छेदक, पत्ती लपेटक एवं धान का फुदका।

खेत की तैयारी

1. ट्राइकोडर्मा अथवा स्युडोमोनास की गोबर की खाद का प्रयोग करें।
2. मई-जून में ढेंचे की बुवाई 30 किग्रा/है. की दर से करें एवं 45-55 दिन बाद जुताई कर खेत में मिला दें। जुताई से एक दिन पहले ट्राइकोडर्मा का 5 ग्रा./ली. घोल छिड़काव करें।
3. 25 किग्रा/है. की दर से जिंक सल्फेट का प्रयोग करें।

नर्सरी डालने के समय

1. जहां तक सम्भव हो, ब्लास्ट प्रतिरोधी प्रजाति का प्रयोग करें।
2. स्युडोमोनास 10 ग्रा./किलो ग्राम बीज की दर से बीज उपचार करें।
3. तना छेदक के लिए प्रति 100 वर्ग मी. पर एक फेरोमैन ट्रैप का प्रयोग करें।
4. ट्राइकोग्रामा जापोनिकम/ ट्राइकोग्रामा चिलानिस 150000 अण्डे/ है. की दर से छोड़ें।

पौध रोपण के समय

1. जीवाणु झुलसा से बचने के लिए पौधों की रोपाई छायादार स्थान पर न करें।
2. नर्सरी में पौध उखाड़ने से एक दिन पूर्व स्युडोमोनास का छिड़काव 10 ग्रा./वर्ग मी. की दर से करें।

पौध रोपण के बाद से पकने तक

1. फेरोमैन ट्रैप 5 मिली. ग्रा. ल्योर/ट्रैप, 20 ट्रैप/है., 20 से 25 मी. की दूरी पर प्रयोग करें। 30 दिन बाद ल्योर बदल दें। ट्रैप की ऊंचाई 50 सें.मी. रखते हैं।
2. ट्राइकोग्रामा जापोनिकम/ ट्राइकोग्रामा चिलीनिस 3-4 बार 150000 अण्डे/ है. की दर से छोड़ें।
3. खेत में अधिक समय तक पानी नहीं रुकना चाहिये।
4. ट्राइकोडर्मा+स्युडोमोनास के 2-4 छिड़काव एक सप्ताह के अंतराल पर बाली निकलने के समय करना चाहिये। भूरा धब्बे के लिए उचित है।
5. इसके अलावा 5% एन.एस.के.ई. का एक छिड़काव धान बग को रोकता है।

मॉडयूल 2: प्रचलित सुगन्धित धान की खेती हेतु

किस्में- देहरादून बासमती, हंसराज, तिलक चंदन, बिन्दली, और काला नमक

मुख्य समस्यायें- भूरा धब्बा, झोंका, पर्ण छन्द विगलन, पर्ण छन्द अंगमारी, झुलसा, तना छेदक, पत्ती लपेटक एवं धान का फुदका।

उर्वरक- रोपाई के पूर्व नत्रजन 10 कि.ग्रा./है. फास्फोरस 40 कि.ग्रा., पोटाश 60 कि.ग्रा., जिंक सल्फेट 25 कि.ग्रा. /है.।

रोपाई के 30 दिनों के बाद- नत्रजन 10 कि.ग्रा./है.

बाली निकलने के समय- नत्रजन 10 कि.ग्रा./है.

नर्सरी डालने के समय

1. स्युडोमोनास 10 ग्रा./किलोग्राम बीज की दर से बीज उपचार करें।
2. तना छेदक के लिए प्रति 100 वर्ग मी. पर एक फेरोमैन ट्रैप का प्रयोग करें।
3. ट्राइकोग्रामा जापोनिकम/ ट्राइकोग्रामा चिलानिस 150000 अण्डे/ है. की दर से छोड़े।

पौध रोपण के समय

1. जीवाणु झुलसा से बचने के लिए पौधों की रोपाई छायादार स्थान पर न करें।
2. नर्सरी में पौध उखाड़ने से एक दिन पूर्व स्युडोमोनास का छिड़काव 10 ग्रा./वर्ग मी. की दर से करें।
3. एक स्थान पर 2-3 पौधों की रोपाई करें।
4. लाइन से लाइन तथा पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. रखें।

5. खरपतवारनाशी ब्युटाक्लोर 1.5 कि.ग्रा./है. या एनेलोफॉस 0.4 कि.ग्रा./है. रोपाई के 3-5 दिन बाद प्रयोग करें।

रोपाई के बाद पकने तक

1. फेरोमैन ट्रैप (20 ट्रैप/है., 5 मि.ग्रा. ल्योर, 20×25 मी. की दूरी पर) ल्योर 30 दिन बाद बदल दें।
2. यदि तना भेदक की संख्या अधिक हो तो ट्राइकोग्रामा चिलानिस (150000/है.) की दर से 3-4 बार छोड़ें।
3. जल निकासी का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। इससे पर्ण अंगमारी तथा जीवाणु झुलसा नहीं फैलता।
4. ट्राइकोडर्मा+स्युडोमोनास (10 ग्रा./ली.)+ प्रोपेकोनाजोल/ कार्बेन्डाजिम (4 ग्रा. + 1 ग्रा./ली.) 10 दिन के अंतराल पर लक्षण की शुरुआत होते ही करें।
5. यदि भूरा फुदका दिखे तो इमीडाक्लोरोप्रिड 25 ग्रा. अ. ई./है. (100 मिली. कान्फीडोर या टाटामीडा/ है.) छिड़काव पौधे के निचले हिस्से की ओर करना चाहिये। फिनोप्रिल (50 ग्रा. अ. ई./है.) भी तना भेदक के लिए लाभदायक है।
6. धान बग के लिये एन.एस.के.ई 5% का एक छिड़काव करें।

मॉडयुल 3: अधिक उत्पादन वाले सुगन्धित धान की खेती हेतु

किस्में- पूसा बासमती 1, सुगन्ध 2, सुगन्ध 3

मुख्य समस्यायें- भूरा धब्बा, झोंका, पर्ण छन्द विगलन, पर्ण छन्द अंगमारी, झुलसा, तना छेदक, पत्ती लपेटक एवं धान का फुदका।

उर्वरक- रोपाई के पूर्व नत्रजन 30 कि.ग्रा./है. फास्फोरस 60 कि.ग्रा., पोटाश 40 कि.ग्रा., जिंक सल्फेट 25 कि.ग्रा. /है.।

रोपाई के 30 दिनों के बाद- नत्रजन 30 कि.ग्रा./है.

बाली निकलने के समय-नत्रजन 30 कि.ग्रा./है.

नर्सरी डालने के समय

1. स्युडोमोनास 10 ग्रा./किलो ग्राम बीज की दर से बीज उपचार करें।
2. तना छेदक के लिए प्रति 100 वर्ग मी. पर एक फेरोमैन ट्रैप का प्रयोग करें।
3. ट्राइकोग्रामा जापोनिकम/ ट्राइकोग्रामा चिलानिस 150000 अण्डे/है. की दर से छोड़ें।

पौध रोपण के समय

1. जीवाणु झुलसा से बचने के लिए पौधों की रोपाई छायादार स्थान पर न करें।
2. नर्सरी में पौध उखाड़ने से एक दिन पुर्व स्यूडोमोनास का छिड़काव 10 ग्रा./वर्ग मी. की दर से करें।
3. एक स्थान पर 2-3 पौधों की रोपाई करें।
4. लाइन से लाइन की दूरी 20 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. रखें।
5. खरपतवारनाशी ब्युटाक्लोर 1.5किग्रा./है. या एनेलोफॉस 0.4 कि.ग्रा./है. रोपाई के 3-5 दिन बाद प्रयोग करें।

रोपाई के बाद पकने तक

1. फेरोमैन ट्रैप (20 ट्रैप/है., 5 मि.ग्रा. ल्योर, 20×25 मी. की दूरी पर) ल्योर 30 दिन बाद बदल दें।
2. यदि तना भेदक की संख्या अधिक हो तो ट्राइकोग्रामा चिलानिस (150000/है.) की दर से 3-4 बार छोड़ें।
3. जल निकासी का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। इस से पर्ण अंगमारी तथा जीवाणु झुलसा नहीं फैलता।
4. ट्राइकोडर्मा + स्यूडोमोनास (10 ग्रा./ली.) + प्रोपेकोनाजोल/ कार्बेन्डाजिम (4 ग्रा. + 1 ग्रा./ली.) 10 दिन के अंतराल पर लक्षण की शुरुआत होते ही करें।
5. यदि भूरा फुदका दिखे तो इमीडाक्लोप्रिड 25 ग्रा. अ. ई./है. (100 मि.ली. कानफीडोर या टाटामीडा/है. छिड़काव पौधे के निचले हिस्से की ओर करना चाहिये। फिनोप्रिल (50 ग्रा. अ. ई./है.) भी तना भेदक के लिए लाभदायक है।
6. धान बग के लिये एन.एस.के.ई. 5% का एक छिड़काव करें।
7. स्ट्रेप्टोसाइक्लिन + ब्लाइटॉक्स 30 (6 ग्रा./ली.) जीवाणु झुलसा के लक्षण की शुरुआत होते ही छिड़काव।

□□

बासमती धान में बकाने रोग

विष्णु माया बस्याल, रश्मि अग्रवाल एवं उदय धारी सिंह
पादप रोग विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

धान भारत की प्रमुख खाद्यान्न फसल है। देश के कृषि योग्य भूमि के 30 प्रतिशत हिस्से में धान की खेती होती है। पूसा बासमती 1121 की खेती से अधिक लाभ के कारण, बासमती धान के उत्पादन में एक महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिला है। अपने अद्‌भुत गुणों और दानों की पकने की गुणवत्ता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पूसा बासमती 1121 की मांग परंपरागत बासमती की अपेक्षा अधिक है। पिछले कुछ वर्षों से बकाने रोग के कारण इसकी उत्पादकता मे कमी देखी गई है। यह रोग धान की पैदावार को 15 से 40 प्रतिशत तक हानि पहुँचाता है।

रोग के लक्षण: यह रोग *फ्युजेरियम मोनिलिफोरमी* नामक कवक से उत्पन्न होता है। पौधशाला में रोग ग्रस्त पौधा, स्वस्थ पौधे की अपेक्षा असामान्य लम्बा होता है। उच्च भूमि में धान के पौधों का बिना लम्बा हुए ही तल गलन/पद गलन के लक्षण मिलते हैं। ऐसे पौधे ज्यादा दिन तक बचे नहीं रहते और जल्दी ही सूख जाते हैं।

रोपाई के पश्चात ये पौधे पीले, पतले तथा लम्बे हो जाते हैं। रोगी पौधे में दौजियां (कल्ले) कम निकलती हैं और पौधा जल्दी ही सूख जाता है। बचे हुए पौधों की बालियों में दाने नहीं बनते और बालियां खाली होती हैं। ध्यान से देखने पर दौजियां निकलने या बालिया आने के बाद नमीयुक्त वातावरण में तने के निचले भागों पर सफेद से गुलाबी रंग का कवक दिखाई देता है जो क्रमश: ऊपर बढ़ता है। रोगग्रस्त पौधे की जड़ें सड़कर काली हो जाती हैं और उसमें दुर्गंध आने लगती है। कभी-कभी रोगी पौधा, अपस्थानिक जड़ें (एडवेंटियस रूट) भी बनाता है। बकाने रोगग्रस्त पौधा सामान्य से छोटा भी होता है। ऐसे पौधे की जड़ें सड़कर काली हो जाती हैं और उसमें दुर्गंध आने लगती है। ऐसे पौधे ज्यादा दिन तक जीवित नहीं रहते और बालियों के बनने से पहले ही सूख जाते हैं।

रोग का विकास: बकाने मुख्यत: बीज जनित रोग है। धान के पौधों में फूल निकलने का समय बीज संक्रमण के लिए उपयुक्त पाया गया हैं। कवक पराग कोष और वर्तिकाग्र में अंतराकोशिका से होकर बढ़ता है और अंडाशय में पहुँच जाता है। जब रोगी बीज पौधशाला में बोये जाते हैं, तब कवक सर्वांगी हो जाता है तथा बकाने के लक्षण प्रदर्शित करता है। यह कवक सर्दियों में बीज और पौधों के अवशेष में चार से दस महिने तक जीवित रह सकते हैं। यह रोग निम्न तापमान में कम दिखाई देता है तथा उच्च तापमान (35^0 से.) रोग के विकास के लिए सबसे अनुकूल हैं। नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग रोग के विकास में सहायक होता है। रोग का प्रकोप बलुई दोमट मिट्‌टी में अधिक होता है। अत्यधिक पानी, पीले, पतले तथा लम्बे पौधों के लिए सहायक हैं और सूखी मिट्‌टी में बौने पौधे और तलगलन अधिक पाया जाता है। प्राय: सूखे बीजों की बुआई में अंकुरित बीजों के अपेक्षा रोग अधिक होता है।

प्रबंधन

बकाने मुख्यत: बीज जनित रोग है अत: स्वस्थ व साफ बीजों का प्रयोग करें। ग्रीष्म ऋतु में खेत की जुताई करें और कुछ दिनों के लिए खाली छोड़ दें, जिससे हानिकारक कवक और खरपतवार नष्ट हो जायें। गरम पानी ($50-57^0$ से.) से 15 मिनट तक बीजोपचार उपयोगी हैं। बाविस्टीन के 0.1 प्रतिशत (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) घोल में बीजों को 24 घंटे भिगोयें तथा अंकुरित करके नर्सरी में बिजाई करें। रोपाई के समय रोगग्रस्त पौधों को न रोपें और गीली पौधशाला में बुआई करें। पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देने पर उन्हें उखाड़ कर नष्ट कर दें। अत्यधिक नाइट्रोजन का प्रयोग न करें।

□□

धान की फसल में जड़-गांठ सूत्रकृमि रोग नियंत्रण

पंकज, हरेन्द्र कुमार, अजय कुमार गांगूली, खजान सिंह एवं जगन लाल
सूत्रकृमि विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

धान की फसल में जड़ गांठ रोग, *मिलाइडोगायनी ग्रेमिनीकोला* सूत्रकृमि के प्रकोप से होता है। यह सूत्रकृमि ऊपरी क्षेत्र व कम वर्षा के पूर्वी इलाकों के धान उगाने वाले क्षेत्रों में ज्यादा सक्रिय होता है। यह सूत्रकृमि दोमट व बलूई दोमट मिट्टी में धान की फसल को ज्यादा क्षति पहुंचाता है व देश को प्रति वर्ष लगभग 100 करोड़ रुपयों की आर्थिक हानि होती है । यह सूत्रकृमि टमाटर, सोयाबीन और दालों आदि फसलों को भी हानि पहुंचाता है।

सूत्रकृमि का जीवन चक्र

जड़ गांठ सूत्रकृमि पूरे वर्ष अपनी जीवन प्रक्रिया बनाए रखते हैं। यह सूत्रकृमि 30 दिन में अपना जीवन चक्र पूरा कर लेते हैं। सूत्रकृमि जड़ों में अन्दर घुसकर पौधे का भोजन परजीवी रहकर चूसते रहते हैं। जड़ों की कोशिकाओं को क्षति पहुंचाकर व प्रजनन करके एक मादा सूत्रकृमि 400 से 500 अण्डे जड़ों के अन्दर जिलेटिन जेली में देकर अपना जीवन चक्र पूरा करती है। जिससे पौधे की जड़ों के छोर पर मोटी-मोटी गांठें बन जाती हैं। इन्हीं जड़ गांठों से सूत्रकृमि निकलकर नई जड़ों में घुसकर फसल को हानि पहुंचाते हैं। यह सूत्रकृमि एक फसल काल में 1-3 जीवन चक्र पूरा करते हैं।

धान की फसल में रोग के लक्षण

- धान की फसल को लगातार अपनाने से धान जड़ गांठ सूत्रकृमि फसल में ज्यादा आता है जो फसल की पैदावार को हानि पहुंचाता है।
- यह सूत्रकृमि धान की जड़ों के आखरी छोर पर मुड़ी हुई मोटी गांठें बनाता है जससे जड़ें छोटी व गुच्छेदार बन जाती हैं।
- इस सूत्रकृमि के प्रकोप से पौधों में कम फुटाव व बढ़ोत्तरी कम होती है। खेत में कई जगह पौधे छोटे व पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और बाद में धान का पौधा सूखकर मर जाता है।
- रोगी पौधों में कम व छोटी बालियां आती हैं और बालियों में दाने छोटे व कम बनते हैं।

यह सूत्रकृमि पानी, मिट्टी, रोगी पौधों व खेत में काम आने वाले औजारों द्वारा एक खेत से दूसरे खेत में फैलता है।

धान जड़ गांठ सूत्रकृमि प्रबंधन

- धान की नर्सरी को सूत्रकृमि रहित क्षेत्र में लगायें।
- धान की नर्सरी लगाने वाली जगह का 3 सप्ताह तक सूर्यतपन करें।
- नर्सरी की क्यारियों में कार्बोफ्युरान-3जी, 33 कि.ग्रा. (1-1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व) प्रति हेक्टेयर की दर से उपचार करें।
- गेहूं-धान खेत के फसल चक्र में मक्का, मूंगफली, घीया, तोरई, मूंग, लोबिया, लहसुन, मिर्च, बैंगन आदि को खेत में लगाने से धान जड़ गांठ सूत्रकृमि का नियंत्रण होता है।

- धान की पौध रोपाई से पहले खेत में अच्छी तरह पडलिग करें।
- धान रोपाई के एक माह पहले खेत में हरी खाद के लिए सनई (क्रोटोलेरिया) की बुआई करें। सनई की 1-2 माह की फसल को जुताई करके खेत में ही अच्छी तरह मिला दें। ऐसा करने से जड़-गांठ सूत्रकृमि की संख्या को कम कर सकते हैं व फसल को खाद भी मिलती है।
- गर्मियों में हल्की सिंचाई के बाद खेत की 2-3 बार 8-10 दिन के अंतराल पर गहरी जुताई करने से सूत्रकृमि सूर्यतपन से मर जाते हैं।
- रोगी धान के खेत में 8-10 दिन तक पानी भरकर रखा जाये तो जड़-गांठ सूत्रकृमि रोग कम हो जायेगा।
- गेहूं-धान के खेत में जहां रोग हो वहां पर कार्बोफ्युरान-3जी, 33 कि.ग्रा. (1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व) प्रति हेक्टेयर के हिसाब से डालकर सूत्रकृमि का नियंत्रण कर सकते हैं।
- धान की नर्सरी लगाने से पहले बीज को कार्बोसल्फान (मार्शल) 25 ई.सी. का 1 प्रतिशत का घोल बनाकर उसमें 30-40 मिनट तक बीज भिगोकर, बीजोपचार करने के बाद नर्सरी लगायें तो स्वस्थ पौध नर्सरी में बनेगी (सूत्रकृमि नाशक दवा का प्रयोग खेत में कम करना चाहिये जिससे पर्यावरण को नुकसान नहीं होगा)।
- उपरोक्त विधियों में से 2-3 विधियां अपनी आवश्यकता एवं क्षमता के अनुसार अपनाकर समेकित प्रबन्धन करें।

□□

मोटे अनाजों के प्रसंस्करण से विकसित मूल्यवर्धक खाद्य पदार्थ

श्रुति सेठी, आर.के. पाल एवं एस. के. झा
कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत में अधिकतर बच्चे कुपोषण के शिकार हैं जो भोजन में पौष्टिक तत्वों की कमी से होता है। इस दिशा में काफी प्रयास किया जा रहा है कि खाद्य सुरक्षा को बढ़ाया जाए और पौष्टिक फसलें पैदा की जाए जैसे मिलैट, फल, सब्जी और दालें आदि । इन फसलों की पैदावार बढ़ाने के साथ - साथ पौष्टिक तत्वों - प्रोटीन,कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन तथा खनिज लवणों आदि गुणों को बढ़ाने का भी प्रयत्न किया जा रहा है जैसे मक्का में ज़रूरी एमीनों अम्ल, (लाइसीन एवं ट्रिप्टोफॉन) की गुणवत्ता बढ़ी है तथा सुनहरे मिलैट की पैदावार में बीटा केरोटिन और अन्य रसायनों की बढ़त से इसकी पौष्टिकता बढ़ी है। भारतीय मेडिकल अनुसंधान संस्थान ने चावल से भी अधिक अच्छी एवं पौष्टिक कई मोटे अनाजों की किस्मों पर काम किया है, जिनमें 81 प्रतिशत ज़्यादा प्रोटीन, 350 प्रतिशत ज़्यादा रेशा और 1229 प्रतिशत ज़्यादा लोहा पाया गया।

भारत में मोटे अनाजों का उत्पादन 28 मि.टन है। मिलेट वो अनाज हैं जो घास कुल के सदस्य हैं। इनके कॉब/भुट्टों अथवा पुष्पगुच्छों में बड़ी संख्या में छोटे -छोटे अनाज के दाने होते हैं। ये फसलें पूरे विश्व में अनाज और चारे के लिए उगाई जाती हैं। भारत, अफ्रीका और मध्य अमरीका मिलेट को उत्पन्न करने वाले प्रमुख देश हैं। विश्व में 34% मोटे अनाजों की पैदावार भारत में होती है। और इन मोटे अनाजों में बाजरा का उत्पादन अधिक है और उसके बाद मक्का का है जबकि ज्वार का उत्पादन इन फसलों से कम है।

सबसे ज़्यादा वर्ग में उगाई जाने वाली मिलेट और उनके वानस्पतिक नाम निम्न हैं:

- ज्वार (सोरघम बाइकलर)
- बाजरा या पर्ल मिलेट (पेनीसीटम ग्लौकम)
- रागी या फिंगर मिलेट (इल्यूसाइन कोराकाना)
- फॉक्सटेल मिलेट (सीटेरिला इटैलिका)
- प्रोसो मिलेट (पैनीकम मिलिएसियम)
- कोडो मिलेट (पैस्पेलम स्क्रोबीकुलेटम)
- बोर्नयार्ड मिलेट (इकाइनोक्लोआ फ्रूमेन्टेसी)
- लिटिल मिलेट (पैनीकम सूमाट्रेन्स)

मिलेट भविष्य की खाद्य सुरक्षा के प्रमुख आहार हैं। इनमें विटामिन, खनिज, फाइबर्स तथा पोषक औषधीय तत्व काफी मात्रा में पाए जाते हैं। बाजरा में लोह और विटामिन बी कॉम्पलेक्स अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, और प्रोटीन भी उसमें गेहूँ जितना होता है। मिलेट के प्रोटीन में एमीनों अम्ल संतुलित मात्रा में पाये जाते हैं। इनसे मधुमेह, हृदय रोग तथा पाचन शक्ति को ठीक किया जा सकता है। इतने गुण होने के पश्चात् भी मिलैट अनाज के रूप में लोकप्रिय नहीं है, क्योंकि इसकी उपयोगिता तथा प्रसंस्करण की जानकारी कम है। इसलिए प्रसंस्करण द्वारा इन्हें मूल्यवर्धित भी नहीं किया जाता। अधिक पौष्टिक गुणवत्ता होने के साथ मिलेट में कई औषधीय गुण भी पाये जाते हैं। किसी समय मिलेट को पौष्टिकता की दृष्टि से निम्नवर्ग का खाद्य भोजन माना जाता था परंतु आजकल

मोटे अनाज को औद्योगिक स्तर पर बढ़ावा दिया जा रहा है। क्योंकि जागरूक उपभोक्ता और उच्च वर्ग में ज्वार, बाजरा तथा रागी के मूल्यवर्धक आहार की मांग बढ़ रही है। अनुसंधान संस्थान और खाद्य कंपनियां इस दिशा में नए-नए खाद्य पदार्थ तैयार कर रहे हैं ताकि उपभोक्ता की पौष्टिकता और सुरक्षा का समुचित ख्याल रखा जा सके। अब बाज़ार में मिले-जुले मोटे अनाज से बनी डबल रोटी, बिस्कुट और डोसा का सामान उपलब्ध है। ब्रिटानिया कंपनी इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। इस कंपनी ने न्यूट्रीचॉइस बिस्कुट, दलिया तथा रागी के पदार्थ तैयार किए हैं।

पौष्टिकता की दृष्टि से ज्वार को बहुत अच्छा माना गया हैं। इसमें रेशा बहुत मात्रा में पाया जाता है तथा इसमें ग्लुटन नहीं पाया जाता, जिससे यह मधुमेह, जोड़ों के दर्द तथा अन्य बिमारियों के लिए लाभकारी है। ज्वार हड्डियों और दांतों के लिये भी अच्छा होता है। ज्वार में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और वसा गेहूँ के बराबर है परंतु इसमें रेशा, गेहूँ से अधिक मात्रा में पाया जाता है। ज्वार की विशेषता को जानने के बाद इससे बने पदार्थों की मांग खाद्य बाज़ार में बढ़ गई है। अत: मिलेट तथा अन्य मोटे अनाजों का मूल्यवर्धन इस दिशा में बहुत अच्छा कदम है जिससे उपभोक्ता को पौष्टिक एवं संतुलित आहार मिल सकेगा और देश मे कुपोषण रोग को काफी हद तक ठीक किया जा सकेगा।

मिलेट के प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन से खाद्य पदार्थों का स्वाद बेहतर हो जाने से उन उपभोक्ताओं को लाभ होगा, जो सामान्यत: उन्हें नहीं खाते हैं । साथ ही ये खाद्य पदार्थ की उपलब्धता को विस्तारित करने में भी उपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त मूल्यवर्धित खाद्य उत्पाद अधिक पोषक उत्पाद निर्मित करने का अवसर भी प्रदान करते हैं, प्रवृत्तियों में विविधता और भिन्नता भी प्रदान करते हैं और स्वास्थ्य आहारों का हिस्सा बन सकते हैं। खाद्य उत्पादों में गुणवत्ता आश्वासन को लागू करने के लिए अनेक कार्यक्रम विकसित किए गए हैं जैसे क्रांतिक नियंत्रण बिंदु (एच.ए.सी.सी.पी.) इत्यादि। इन सब गुणवत्ता आश्वासन और महत्वपूर्ण बिंदुओं का पालन करने से उनकी खाद्य सुरक्षा, गुणवत्ता तथा उपभोक्ताओं का भरोसा पाया जा सकता है।

भारत में मिलेट के प्रसंस्करण के लिए कार्यरत संस्थाएं निम्नलिखित हैं:

- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
- राष्ट्रीय ज्वार अनुसंधान केन्द्र, हैदराबाद
- केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर
- भारतीय पोषण संस्थान, हैदराबाद

यह सभी अनुसंधान केन्द्र, मिलेट के उत्पादों की खपत बढ़ाने के लिए विभिन्न उत्पादों जैसे- आटा, सूजी, पोहा हलवा, इडली, उपमा, बच्चों का आहार (इंफेंट फूड) इत्यादि के विभिन्न व्यंजन बनाने हेतु प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए कार्यरत हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी संभाग में मिलेट का प्रसंस्करण करके कई मूल्यवर्धक पदार्थ तैयार किए गए हैं। यहाँ इन प्रसंस्करित पदार्थों की गुणवत्ता, उन्हें टिकाऊ बनाने एवं जीवाणु रहित रखने हेतु अनुसंधान किया गया है। इन सभी पदार्थों की तकनीकी जानकारी संभाग से प्राप्त की जा सकती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में विकसित मिलेट से बने कुछ खाद्य उत्पाद निम्नलिखित हैं :

1. ज्वार फ्लेक्स
2. बाजरा नानखताई
3. ज्वार नानखताई
4. बाजरे के फूले हुए उत्पाद (एक्सट्रयूटिड पदार्थ)।

□□

मेरे देश का किसान

मेरे देश के किसान का, देशी रहन-सहन निराला है।
चेहरे से गुम सुम गठीला बदन, देखने में भोला भाला है।

ज्येष्ठ माह की कड़ी धूप या माघ माह की ठिठुरती सर्दी
छोटे से अंग वस्त्र, मैली धोती, यही सदाबहार उसकी वर्दी
देकर मूछों पर ताव सदा, अंगोछा कन्धे पै डाला है।
मेरे देश के किसान का, देशी रहन-सहन निराला है।

आँधी हो या तूफान, बरसात हो घमासान
लू के लगें थपेड़े, सिर पर ओलों के निशान
सहन कर सूखे हाड पर सभी को, प्रकृति को सोच में डाला है।
मेरे देश के किसान का, देशी रहन-सहन निराला है।

पन पती रोटी, आम की चटनी, साथ में प्याज की गंठी
निगल कर झटके से गले में, पेय प्रिय छाछ की घंटी
पेट काट कर अपना सदा, दिया दूसरों को निवाला है।
मेरे देश के किसान का, देशी रहन-सहन निराला है।

क्रान्ति हरी हो, पीली हो, या हो श्वेत क्रान्ति
जान पर खेलकर सपरिवार, प्रदान की देश में शान्ति
निर्यात बढ़ाकर कृषि जिन्सों की, अर्जित विदेशी मुद्रा का बोलबाला है।
मेरे देश के किसान का, देशी रहन-सहन निराला है।

आगे बढो किसानों देश में, दूसरी हरित क्रान्ति लानी है।
पौष्टिक आहार भरपेट सभी को, मकान की आस जगानी है।
वेद, आयुर्वेद व सात्विक खेती पर, विश्व को सोच में ढ़ाला है।
मेरे देश के किसान का देशी रहन-सहन निराला है।

– डॉ. सी.बी. सिंह, एटिक भा.कृ.अ.सं., नई दिल्ली